वार्षिक रु. ६०.०० मूल्य रु. ८.००

विवेक-ज्योति

वर्ष ४६ अंक ४ अप्रैल २००८

रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ. ग.)
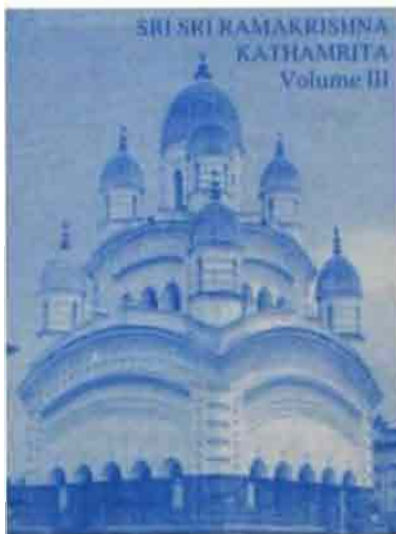
JUST RELEASED

VOLUME III
of
Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

in English

A verbatim translation of the third volume of original Bengali edition. Available as hardbound copy at *Rs. 150.00 each* (plus postage Rs. 30.00). Available online at: *www.kathamrita.org*

HINDI SECTION

- **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita** Vol. I to V Rs. 300 per set (plus postage Rs. 50)

  M. (Mahendra Nath Gupta), a son of the Lord and disciple, elaborated his diaries in five parts of 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita' in Bengali that were first published by Kathamrita Bhawan, Calcutta in the years 1902, 1905, 1908, 1910 and 1932 respectively. This series is a verbatim translation in Hindi of the same.

- **Sri Ma Darshan** Vol. I to XVI Rs. 825 per set (plus postage Rs. 115)

  In this series of sixteen volumes Swami Nityatmananda brings the reader in close touch with the life and teachings of the Ramakrishna family: Thakur, the Holy Mother, Swami Vivekananda, M., Swami Shivananda, Swami Abhedananda and others. The series brings forth elucidation of the Upanishads, the Gita, the Bible, the Holy Quran and other scriptures, by M., in accordance with Sri Ramakrishna's line of thought. **This work is a commentary on the Gospel of Sri Ramakrishna by Gospel's author himself.**

ENGLISH SECTION

Title	Volumes	Price
Sri Sri Ramakrishna Kathamrita	Vol. I to III	Rs. 450.00 for all three volumes (plus postage Rs. 60)
M., the Apostle & the Evangelist (English version of Sri Ma Darshan)	Vol. I to X	Rs. 900.00 per set (plus postage Rs. 100)
Sri Sri RK Kathamrita Centenary Memorial		Rs. 100.00 (plus postage Rs. 35)
Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita		Rs. 150.00 (plus postage Rs. 35)
A Short Life of M.		Rs. 50.00 (plus postage Rs. 20)

BENGALI SECTION

- **Sri Ma Darshan** Vol. I to XVI Rs. 650 per set (plus postage Rs. 115)

All enquiries and payments should be made to:

SRI MA TRUST
579, Sector 18-B, Chandigarh – 160 018 India
Phone: 91-172-272 44 60
email: SriMaTrust@yahoo.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २००८

प्रबन्ध-सम्पादक

स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक

स्वामी विदेहात्मानन्द

वर्ष ४६
अंक ४

वार्षिक ६०/- एक प्रति ८/-

५ वर्षों के लिए – रु. २७५/-

आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/-

संस्थाओं के लिये –

वार्षिक ९०/- ; ५ वर्षों के लिए – रु. ४००/-

विदेशों में – वार्षिक १५ डॉलर, आजीवन – २०० डॉलर (हवाई डाक से) १०० डॉलर (समुद्री डाक से)

{सदस्यता-शुल्क की राशि स्पीडपोस्ट मनिआर्डर से भेजें अथवा बैंक-ड्राफ्ट - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवायें}

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर – ४९२ ००१ (छ.ग.)

दूरभाष: ०९८२७१ ९७५३५
०७७१ - २२२५२६९, २२२४११९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग आफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : २५४६६०३)

लेखकों से निवेदन

पत्रिका के लिये रचना भेजते समय निम्न बातों पर ध्यान दें —

(१) धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा किसी भी जीवनोपयोगी विषयक रचना को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।

(२) रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिक-से-अधिक चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो। भेजने के पूर्व एक बार स्वयं अवश्य पढ़ लें।

(३) लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दिया जाय।

(४) आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिए अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।

(५) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ कविताएँ इतनी संख्या में आती हैं कि उनका प्राप्ति-संवाद देना सम्भव नहीं होता। स्वीकृत होने पर भी उसके प्रकाशन में ६-८ महीने तक लग सकते हैं।

(६) अनुवादित रचनाओं के मूल स्रोत का पूरा विवरण दिया जाय तथा उसकी एक प्रतिलिपि भी संलग्न की जाय।

(७) 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त मतों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा।

(८) 'विवेक-ज्योति' के लिये भेजी जा रही रचना यदि इसके पूर्व कहीं अन्यत्र प्रकाशित हो चुकी हो या प्रकाशनार्थ भेजी जा रही हो, तो उसका भी उल्लेख अवश्य करें। वैसे इसमें मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है।

सदस्यता के नियम

(१) 'विवेक-ज्योति' पत्रिका के सदस्य किसी भी माह से बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क की राशि यथासम्भव **स्पीड-पोस्ट मनिआर्डर** से भेजें या बैंक-ड्राफ्ट – **'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़)** के नाम से बनवायें। यह राशि भेजते समय एक अलग पत्र में अपना नाम, पिनकोड सहित पूरा पता और टेलीफोन नं. आदि की पूरी जानकारी भी स्पष्ट रूप से लिख भेजें।

(२) पत्रिका को निरन्तर चालू रखने हेतु अपनी सदस्यता की अवधि पूरी होने के पूर्व ही नवीनीकरण करा लें।

(३) पत्रिका न मिलने की शिकायत माह पूरा होने पर ही करें। उसके बाद अंक रहने पर ही पुनः प्रेषित किया जायेगा।

(४) अंक सुरक्षित पाने हेतु प्रति अंक ६/- रुपये अतिरिक्त खर्च कर इसे वी.पी. पोस्ट से मँगाया जा सकता है। यह राशि प्रति माह अंक लेते समय पोस्टमैन को देनी होगी, अतः इसे हमें मत भेजें।

(५) सदस्यता, एजेंसी, विज्ञापन या अन्य विषयों की जानकारी के लिये 'व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय' को लिखें।

श्री.'म' उर्फ महेंद्रनाथ गुप्त द्वारा संकलित

श्रीरामकृष्ण-वचनामृत

(सम्पूर्ण)

पृष्ठसंख्या १६+१२८०

मूल्य रु. १००/- मात्र
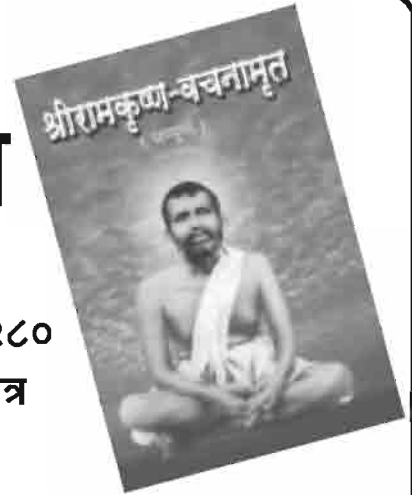
कृपया नीचे लिखे हुए पते पर

रु. १००/- + रु. ३०/- (डाकखर्च) = रु. १३०/- की मनिऑर्डर करें।

आपका पूरा नाम और पता (डाकघर, तहसील, जिला, प्रान्त तथा पीनकोड) **स्पष्ट अक्षरों में लिखें।**

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-वेदान्त साहित्य एवं अन्य आध्यात्मिक प्रकाशनों के लिए लिखें –

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२ (महाराष्ट्र)

फोन : (०७१२) २४३२६९०, २४२३४२२; फॅक्स : २४३७०४२ ई-मेल : rkmathpb_ngp@sancharnet.in

विवेक-चूडामणि

– श्री शंकराचार्य

सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-गोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ।।१।।

अन्वय – अगोचरम् (अपि) सर्व-वेदान्त-सिद्धान्त-गोचरम् तम् परमानन्दम् सद्गुरुम् गोविन्दम्, अहम् प्रणतः अस्मि ।

अर्थ – जो मन-बुद्धि के अतीत होकर भी, वेदान्त के समस्त सिद्धान्तों के विषय हैं, उन परम आनन्दमय (ब्रह्म-स्वरूप) सद्गुरु श्री गोविन्द को मैं प्रणाम करता हूँ।

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः पुंस्त्वं ततो विप्रता
तस्माद्वैदिक-धर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात्परम् ।
आत्मानात्म-विवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति-
र्मुक्तिर्नो शतजन्म-कोटिसु कृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते।।२।।

अन्वय – जन्तूनाम् नर-जन्म दुर्लभम् (अस्ति), अतः पुंस्त्वम् (दुर्लभम्), ततः विप्रता, तस्मात् वैदिक-धर्म-मार्ग-परता, अस्मात् परम् विद्वत्त्वम् आत्म-अनात्म-विवेचनम्, (तस्मात्) स्वनुभवः ब्रह्मात्मना संस्थितिः (दुर्लभम् अस्ति) । (अतः) शत-जन्म-कोटिसु कृतैः पुण्यैः विना मुक्तिः नो लभ्यते ।

अर्थ – प्राणियों के लिये सर्वप्रथम तो मनुष्य देह प्राप्त करना ही अत्यन्त दुर्लभ है; उसमें भी पुरुष शरीर, उसमें भी ब्राह्मणत्व के संस्कार, उसमें भी वैदिक धर्म में प्रवृत्ति, उसमें भी शास्त्र के आत्म-अनात्म विचार रूपी तात्पर्य का सम्यक् ज्ञान, उसमें भी प्रत्यक्ष अनुभूति, उसमें भी ब्रह्म में निरन्तर स्थिति – ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं। इस प्रकार सैकड़ों करोड़ जन्मों के सत्कर्म रूपी पुण्यों के बिना मुक्ति नहीं मिलती।

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रह-हेतुकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुष-संश्रयः।।३।।

अन्वय – मनुष्यत्वम्, मुमुक्षुत्वम्, महापुरुष-संश्रयः – एतद् त्रयम् एव दुर्लभम्, (केवलं) देवानुग्रह-हेतुकम् (प्राप्यते) ।

अर्थ – मनुष्य शरीर में जन्म, मोक्ष प्राप्ति की इच्छा (मुमुक्षा) और महापुरुषों का संग – ये तीनों चीजें अत्यन्त दुर्लभ हैं और ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती हैं

लब्ध्वा कथंचिन्नर-जन्म दुर्लभं
तत्रापि पुंस्त्वं श्रुतिपार-दर्शनम् ।
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः
स ह्यात्महा स्वं विनिहन्त्यसद्ग्रहात् ।।४।।

अन्वय – कथंचित् दुर्लभम् नरजन्म लब्ध्वा, तत्र अपि पुंस्त्वम्, श्रुतिपार-दर्शनम् (च लब्ध्वा) तु यः मूढधीः आत्ममुक्तौ यतेत न, सः हिं आत्महा, स्वम् असद्-ग्रहात् विनिहन्ति ।

अर्थ – किसी प्रकार ऐसा दुर्लभ मानव-जन्म और उसमें भी पुरुष शरीर तथा वेदान्त-तत्त्व पर विचार करने की क्षमता प्राप्त करके भी, जो मूर्ख अपनी मुक्ति के लिये प्रयास नहीं करता, वह (क्षणिक तथा) मिथ्या वस्तुओं को ग्रहण करके अपना विनाश करने के कारण सचमुच का आत्महन्ता है।

इतः को न्वस्ति मूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ।।५।।

अन्वय – यः दुर्लभं मानुषं देहं, तत्र अपि पौरुषम् प्राप्य तु, स्व-अर्थे प्रमाद्यति, इतः नु मूढात्मा को अस्ति?

अर्थ – जो व्यक्ति ऐसा दुर्लभ मानव-शरीर और उसमें भी पुरुष देह पाकर भी अपने परम स्वार्थ-लाभ (मुक्ति) की चेष्टा में आलस्य करता है, उससे बड़ा मूर्ख इस दुनिया में दूसरा कौन होगा?

चार कुण्डलियाँ

(कुछ प्रसिद्ध कहावतों तथा दोहों पर रचित)

– १ –

नाम-रतन की लूट है, लूटो प्रभु का नाम ।
पछताओगे अन्यथा, जब निकलेंगे प्राण ।।

जब निकलेंगे प्राण, पुनः जग में आओगे ।
लोभ-मोह के चक्कर में, फिर दुःख पाओगे ।।

कह 'विदेह' यह बात सुनो, है बड़े जतन की ।
जब तक घट में प्राण, शरण लो नाम-रतन की ।

– २ –

रहिमन चुप हो बैठिये, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आयेंगे, बनत न लगिहैं देर ।।

बनत न लगिहैं देर, धैर्य से करो प्रतीक्षा ।
जीवन में दुःख-सुख - दोनों देते हैं शिक्षा ।।

कह 'विदेह' सब ईश्वर का ही खेल देखिये ।
साक्षी बनकर रहिये, चुप हो शान्त बैठिये ।।

– ३ –

जो मरने से जग डरै, सो मेरे आनन्द ।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ।।*

पूरन परमानन्द, वही मेरा स्वरूप है ।
जग में छाया, मिथ्या नाना नाम-रूप है ।।

पा 'विदेह' चिर मुक्ति, प्राण अन्तर भरै ।
माया से हो भ्रमित, मृत्यु से जग डरै ।।

– ४ –

राम-झरोखा बैठकर, सबका मुजरा लेहि ।
जाकी जैसी चाकरी, ताको तैसा देहि ।।

ताको तैसा देहि, कर्म का फल मिलता है ।
पुण्य-पाप का तदनुसार सुख-दुख फलता है ।।

कह 'विदेह' मत देना अपने मन को धोखा ।
कर्म करो पर स्मरण रहे, वह राम-झरोखा ।।

---

* सन्त कबीर

भारत का पतन और पुनरुत्थान

स्वामी विवेकानन्द

स्वामीजी की भारत सम्बन्धी उक्तियों का एक उत्कृष्ट संकलन कोलकाता के रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर ने My India, The India Eternal शीर्षक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत है उन्हीं उक्तियों का हिन्दी रूपान्तरण। – सं.)

लोगों को कहा गया कि वे कुछ भी नहीं है

सैकड़ों वर्षो से लोगों को उनकी हीन अवस्था का ही ज्ञान कराया गया है। उनसे कहा गया है कि वे कुछ नहीं है। सारे जगत् में सर्वत्र जन-साधारण से कहा गया है कि तुम लोग मनुष्य ही नहीं हो। शताब्दियों से इस प्रकार डराये जाने के कारण वे बेचारे सचमुच ही करीब-करीब पशुत्व को प्राप्त हो गये हैं। उन्हें कभी आत्मतत्त्व के विषय में सुनने का मौका नहीं दिया गया।[१२]

आलस्य और नीचता

स्वयं कुछ करना नहीं और यदि दूसरा कोई कुछ करना चाहे, तो उसकी हँसी उड़ाना भारतवासियों का एक महान् दोष है और इसी से भारतवर्ष का सर्वनाश हुआ है। हृदयहीनता तथा उद्यम का अभाव सब दु:खों का मूल है। अत: इन दोनों को त्याग दो। किसके अन्दर क्या है, प्रभु के बिना कौन जान सकता है? सबको मौका मिलना चाहिये। आगे प्रभु की इच्छा। सब पर समान स्नेह रखना बड़ा कठिन है; किन्तु उसके बिना मुक्ति नहीं मिल सकती।[१३]

एक और कारण – संकीर्णता

भारत के दु:ख-दारिद्र्य व पतन का प्रधान कारण यह है कि उसने घोंघे की तरह अपने अंगों को समेटकर अपने कार्य-क्षेत्र को संकुचित कर लिया और अन्य देशों के सत्य-पिपासुओं के लिये अपने जीवनदायी रत्नों का भण्डार नहीं खोला। हमारे पतन का एक अन्य प्रधान कारण यह है कि हमने बाहर जाकर दूसरे राष्ट्रों से अपनी तुलना नहीं की।[१४]

कोई भी मनुष्य, कोई भी राष्ट्र, दूसरों से घृणा करते हुए जी नहीं सकता। भारत के भाग्य का निपटारा उसी दिन हो चुका था, जिस दिन उसने 'म्लेच्छ' शब्द का आविष्कार किया और दूसरे राष्ट्रों से अपना नाता तोड़ लिया।[१५]

प्राचीन या नवीन तर्कजाल इसे चाहे जैसे भी ढँकने की चेष्टा करे, पर उस सामान्य नैतिक नियम के अनुसार कि कोई भी बिना अपने को अध:पतित किये दूसरों से घृणा नहीं कर सकता – इसका अनिवार्य फल यह हुआ कि जो आर्य जाति सभी प्राचीन जातियों में सर्वश्रेष्ठ थी, उसका नाम पृथ्वी की जातियों में एक सामान्य घृणासूचक शब्द-सा हो गया है।[१६]

संगठन का अभाव

तुम लोगों में संगठन की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिल-जुलकर कार्य करने के लिये कोई भी तैयार नहीं। संगठन के लिये सर्वप्रथम आज्ञा-पालन की आवश्यकता है।[१७]

हमारे उपनिषद् कितने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों, अन्य देशों के साथ तुलना में हम अपने पूर्वपुरुष ऋषिगणों पर कितना ही गर्व क्यों न करें, परन्तु मैं तुम लोगों से स्पष्ट शब्दों में कहता हूँ कि हम दुर्बल हैं, अत्यन्त दुर्बल हैं। प्रथम तो है हमारी शारीरिक दुर्बलता। यह शारीरिक दुर्बलता कम-से-कम हमारे एक तिहाई दु:खों का कारण है। हम आलसी हैं, हम कार्य नहीं कर सकते; हम पारस्परिक एकता स्थापित नहीं कर सकते, हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं। ... हम अनेक बातें कहते हैं, परन्तु उनके अनुसार कभी कार्य नहीं करते। इस प्रकार तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है – आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका कारण क्या है? शारीरिक दुर्बलता। दुर्बल मस्तिष्क कुछ नहीं कर सकता, हमें अपने मस्तिष्क को सबल बनाना होगा।[१८]

एक अन्य पाप – नारी की अवहेलना

भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद के द्वारा पीसना।[१९]

क्या तुम 'शाक्त' शब्द का अर्थ जानते हो? ... जो ईश्वर को समग्र जगत् में महाशक्ति के रूप में जानता है और स्त्रियों में इस शक्ति का प्रकाश मानता है, वही शाक्त है। ... महर्षि मनु ने भी कहा है कि जिन परिवारों में स्त्रियों से अच्छा बर्ताव किया जाता है और वे सुखी हैं, उन पर देवताओं की कृपा रहती है। यहाँ (पश्चिम) के पुरुष ऐसा ही करते हैं और इसी कारण सुखी, विद्वान्, स्वतंत्र और उद्योगी हैं। दूसरी ओर हम लोग स्त्रियों को नीच, अधम तथा अतिहेय कहते हैं, इसीलिये हम लोग पशुवत्, दास, उद्यमहीन तथा दरिद्र हो गये।[२०]

क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधम है, शक्तिहीन है और पिछड़ा हुआ है? इसका

कारण यही है कि हमारे यहाँ शक्ति का अनादर होता है।[२१]

भारत के पुनरुत्थान के उपाय

कुछ भी नष्ट मत करो

सर्वप्रथम मैं मनुष्य जाति से यह मान लेने का अनुरोध करता हूँ कि 'कुछ भी नष्ट मत करो'। मूर्तिभंजक सुधारक लोग संसार का कोई उपकार नहीं कर सकते। किसी वस्तु को तोड़कर धूल में मत मिलाओ, वरन् उसका गठन करो। यदि हो सके तो सहायता करो, नहीं तो चुपचाप हाथ उठाकर खड़े हो जाओ और देखो कि मामला कहाँ तक जाता है। यदि सहायता न कर सकते, तो बरबाद भी मत करो। ... जो जहाँ पर है, उसे वहीं से उठाने की चेष्टा करो। ... क्या तुम सोचते हो कि तुम एक शिशु को भी कुछ सिखा सकते हो? नहीं, तुम नहीं सिखा सकते। शिशु स्वयं ही शिक्षा प्राप्त करता है – तुम्हारा कर्तव्य है बाधाएँ हटा देना।[१]

आम जनता – शक्ति का स्रोत

समाज का नेतृत्व चाहे विद्या-बल से प्राप्त हुआ हो, या बाहु-बल से अथवा धन-बल से; परन्तु उस शक्ति का आधार प्रजा ही है। इस शक्ति के आधार से शासक-समाज जितना ही अलग रहेगा, वह उतना ही दुर्बल होगा।[२]

स्वार्थपरता ही नि:स्वार्थता का पहला शिक्षक है। व्यष्टि के स्वार्थों की रक्षा हेतु लोगों का ध्यान समष्टि के हित की ओर जाता है। स्वदेश के स्वार्थ में अपना स्वार्थ और स्वदेश के हित में अपना हित है। अधिकांश कार्य दूसरों के सहयोग के बिना नहीं चल सकते, आत्मरक्षा तक नहीं हो सकती।[३]

समष्टि (समाज) के जीवन में व्यष्टि (व्यक्ति) का जीवन है; समष्टि के सुख में व्यष्टि का सुख है; समष्टि के बिना व्यष्टि का अस्तित्व ही असम्भव है, यही अनन्त सत्य जगत् का मूल आधार है। अनन्त समष्टि के साथ सहानुभूति रखते हुए उसके सुख में सुख और उसके दु:ख में दु:ख मानकर धीरे-धीरे आगे बढ़ना ही व्यष्टि का एकमात्र कर्तव्य है।[४]

हे भारत के श्रमजीवियो

हे भारत के श्रमजीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निन्दित हुये परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, सिकन्दरिया, यूनान, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकन्द, पुर्तगाल, स्पेन, फ्रांसीसी, दिनेमार, डच, और अंग्रेजों का क्रमश: आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला। और तुम? कौन सोचता है इस बात को ! तुम्हारे पुरखे दो दर्शन लिख गये हैं, दस काव्य तैयार कर गये हैं, दस मन्दिर खड़े कर गये हैं और तुम्हारी बुलन्द आवाज से आकाश फट रहा है; और जिनके रुधिर-स्राव से मनुष्य जाति की यह सारी उन्नति हुई है, उनके गुणों का बखान भला कौन करता है? लोकजयी, धर्मवीर, रणवीर, काव्यवीर, सबकी आँखों पर चढ़ते हैं, सबके पूज्य हैं, परन्तु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई एक वाहवाही भी नहीं करता, जहाँ सभी लोग घृणा करते हैं, वहाँ वास करती है अपार सहनशीलता, अनन्य प्रीति और निर्भीक कार्यक्षमता; हमारे गरीब, घर में तथा बाहर दिन-रात मुँह बन्द किये कर्म करते जा रहे हैं, उसमें क्या वीरता नहीं है? बड़ा काम आने पर अधिकांश लोग वीर हो जाते हैं; दस हजार लोगों की वाहवाही के सामने कापुरुष भी सहज ही प्राण दे देता है; घोर स्वार्थी भी निष्काम हो जाता है; परन्तु अत्यन्त छोटे से कार्य में भी, सबके अज्ञात भाव से जो वैसी ही नि:स्वार्थता एवं कर्तव्यपराणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं – वे तुम लोग हो – भारत के हमेशा के पैरों तले कुचले श्रमजीवियो ! तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।[५]

आम जनता का उत्थान

'धर्म को हानि पहुँचाए बिना जनता की उन्नति' – इसे अपना आदर्श-वाक्य बना लो।

याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है; ... राष्ट्र की भावी उन्नति उसकी विधवाओं को मिले पति की संख्या पर नहीं, अपितु 'आम जनता' की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो? क्या उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति को नष्ट किये बिना, उन्हें उनका खोया हुआ व्यक्तित्व वापस दिला सकते हो?[६]

मेरा मानना है कि हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप आम जनता की उपेक्षा है और वह भी हमारे पतन का एक कारण है। हम चाहे जितनी राजनीति करें, उससे तब तक कोई लाभ नहीं होगा, जब तक कि भारत की जनता एक बार फिर सुशिक्षित, सुपोषित तथा सुपालित नहीं होती। वे हमारी शिक्षा के लिये (राजकर के द्वारा) धन देते हैं, (शारीरिक श्रम के द्वारा) हमारे मन्दिर बनाते हैं और बदले में ठोकर पाते हैं। वे व्यवहारत: हमारे दास हैं। यदि हम भारत को पुनर्जीवित करना चाहते हैं, तो हमें उनके लिये काम करना होगा।[७]

हमारा संघ दीन-हीन दरिद्र, निरक्षर किसानों तथा श्रमिकों के लिये है और उनके लिये सब कुछ करने के बाद यदि समय बचेगा, तभी कुलीनों की बारी आयेगी। प्रेम द्वारा तुम उन किसानों तथा श्रमिकों को जीत सकोगे। ... **उद्धरेत् आत्मना आत्मानम्** – अपने प्रयास से अपना उद्धार करो। यह हर परिस्थिति पर लागू होता है। ... जिस क्षण उन्हें अपनी दशा का बोध हो जायेगा और वे सहायता तथा उन्नति की जरूरत समझेंगे, तब जानना कि तुम्हारा प्रभाव पड़ रहा है और तुम ठीक रास्ते पर हो। धनवान लोग दयापूर्वक गरीबों के लिये जो थोड़ी-सी भलाई करते हैं, वह स्थायी नहीं होती और अन्त में दोनों पक्षों को हानि पहुँचती है। किसान और श्रमिक समाज मरणासन्न अवस्था में हैं, और उन्हें जिस चीज की जरूरत है, वह यह है कि धनवान उन्हें अपनी

शक्ति को पुन: प्राप्त करने में सहायता दें और कुछ नहीं। उसके बाद किसानों और मजदूरों को स्वयं ही अपनी समस्याओं का सामना और समाधान करने दो।[८]

दोष धर्म का नहीं

भारतवर्ष में हम लोग गरीबों और पतितों के बारे में जो धारणा रखते हैं, उसे सोचकर मेरे प्राण बेचैन हो गये। उनके लिये न कोई अवसर है, न बचने की कोई राह और न उन्नति के लिये कोई मार्ग ही है। भारत के निर्धनों, पतितों तथा पापियों का कोई साथी नहीं, कोई सहायक नहीं। ... वे दिन-पर-दिन डूबते जा रहे हैं। ... पिछले कुछ वर्षों से विचारशील लोग समाज की यह दुर्दशा समझ रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश इसका दोष वे हिन्दू धर्म के मत्थे मढ़ रहे हैं। वे सोचते हैं कि जगत् के इस सर्वश्रेष्ठ धर्म का नाश ही समाज की उन्नति का एकमात्र उपाय है। सुनो मित्र, प्रभु की कृपा से मुझे इसका रहस्य ज्ञात हो गया है। इसमें दोष धर्म का नहीं, बल्कि उल्टे तुम्हारा धर्म ही तो तुम्हें सिखाता है कि संसार के सारे प्राणी तुम्हारी आत्मा के विविध रूप हैं। इस तत्त्व को व्यावहारिक आचरण में न लाना – सहानभूति का अभाव – हृदय का अभाव – यही समाज की वर्तमान दुरवस्था का कारण है। ... समाज की यह दशा दूर करनी होगी – परन्तु धर्म का नाश करके नहीं वरन् हिन्दू धर्म के महान् उपदेशों का अनुसरण करके और उसके साथ हिन्दू धर्म के स्वाभाविक विकास-रूप बौद्ध धर्म की अपूर्व सहृदयता को जोड़कर।[९]

विकास के लिये पहले स्वाधीनता चाहिये। तुम्हारे पूर्वजों ने आत्मा को स्वाधीनता दी थी, इसीलिये धर्म में उत्तरोत्तर विकास हुआ; परन्तु शरीर को उन्होंने सैकड़ों बन्धनों में डाल दिया, इसी से समाज का विकास रुक गया। पाश्चात्य देशों का हाल ठीक इसके उल्टा है। उनके समाज में स्वाधीनता है, पर धर्म में बिल्कुल नहीं। इसके फलस्वरूप वहाँ धर्म बड़ा अधूरा रह गया, पर समाज की भारी उन्नति हुई है। अब प्राच्य-समाज के पैरों से जंजीरें धीर-धीरे खुल रही हैं और पाश्चात्य-धर्म के लिये भी वैसा ही हो रहा है। ... पश्चिमी देश आध्यात्मिकता को सामाजिक उन्नति के माध्यम से ही करना चाहते हैं, पर प्राच्य देश थोड़ी भी सामाजिक शक्ति को धर्म के द्वारा ही पाना चाहते हैं। इसीलिये आधुनिक सुधारकों को पहले भारत के धर्म का नाश किये बिना सुधार का और कोई दूसरा उपाय ही नहीं सूझता। उन्होंने इस दिशा में चेष्टा भी की है, पर असफल रहे। इसका क्या कारण है? यह कि उनमें से किसी ने अपने धर्म का अच्छी तरह अध्ययन-मनन नहीं किया, उनमें से किसी ने भी वह प्रशिक्षण नहीं लिया, जो इस सब धर्मों की जननी को समझने के लिये जरूरी है! मेरा दावा है कि हिन्दू समाज की उन्नति के लिये हिन्दू धर्म के विनाश की जरूरत नहीं है और ऐसी बात नहीं कि समाज की वर्तमान दशा धर्म के कारण हुई हो, वरन् इसलिये हुई कि धर्म का समाज में उपयोग नहीं किया गया। मैं इस कथन का हर शब्द अपने प्राचीन शास्त्रों से प्रमाणित करने को तैयार हूँ। मैं यही शिक्षा दे रहा हूँ और हमें इसी को कार्यरूप में परिणत करने के लिये जीवन भर चेष्टा करनी होगी।[१०]

अपने इतिहास को जानो

अतीत से ही भविष्य बनता है। अत: यथासम्भव अतीत की ओर देखो, पीछे जो चिरन्तन निर्झर बह रहा है, भरपेट उसका जल पिओ और उसके बाद सामने देखो और भारत को उज्ज्वलतर, महत्तर और पहले से अधिक ऊँचा उठाओ। हमारे पूर्वज महान् थे। पहले हमें यह याद रखकर समझना होगा कि हम किन उपादानों से बने हैं, कौन-सा खून हमारी नसों से बह रहा है। ... इस विश्वास और अतीत गौरव के ज्ञान से हम निश्चय ही पहले से भी श्रेष्ठ भारत बनायेंगे।

जो लोग सदा अपने अतीत की ओर दृष्टि लगाये रखते हैं, आजकल सभी लोग उनकी निन्दा करते हैं। वे कहते हैं कि इस प्रकार सदा अतीत की ओर देखते रहने के कारण ही हिन्दू जाति को नाना प्रकार के दु:ख तथा संकट भोगने पड़े हैं। पर मेरी धारणा है कि इसका विपरीत ही सत्य है। जब तक हिन्दू जाति अपने अतीत को भूली हुई थी, तब तक वह अचेत अवस्था में पड़ी रही और अतीत की ओर दृष्टि जाते ही चहुँ ओर पुनर्जीवन के लक्षण दीख रहे हैं। अतीत के साँचे में भविष्य को ढालना होगा, अतीत ही भविष्य होगा।[११]

अत: हिन्दू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा और जो भी हर व्यक्ति को इस अतीत के बारे में विज्ञ करने की चेष्टा कर रहा है, वह स्वदेश का परम हितकारी है। भारत की अवनति इसलिये नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उनकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया।[१२]

❖ (क्रमश:) ❖

सन्दर्भ-सूची –

१२. विवेकानन्द साहित्य, (सं. १९८९), खण्ड ५, पृ. ११९; **१३**. वही, खण्ड ४, पृ. ३८०; **१४**. वही, खण्ड ५, पृ. २१०; **१५**. वही, खण्ड ३, पृ. ३४; **१६**. वही, खण्ड ३, पृ. ३३१; **१७**. वही, खण्ड ४, पृ. ३११; **१८**. वही, खण्ड ५, पृ. १३६-३७ **१९**. वही, खण्ड ४, पृ. ३२३; **२०**. वही, खण्ड २, पृ. ३१५; **२१**. वही, खण्ड २, पृ. ३६१; **पुनरुत्थान के उपाय – १**. वही, खण्ड ३, पृ. १४८; **२**. वही, खण्ड ९, पृ. २२१; **३**. वही, पृ. २२२; **४**. वही, खण्ड ४, पृ. ४६३; **५**. वही, खण्ड ८, पृ. १९०; **६**. वही, खण्ड २, पृ. ३२१; **७**. वही, खण्ड ४, पृ. २६०-६१; **८**. वही, खण्ड ७, पृ. ४१२-१३; **९**. वही, खण्ड १, पृ. ४०२-०३; **१०**. वही, खण्ड ३, पृ. ३१७-१८; **११**. वही, खण्ड ५, पृ. १७९-८०; **१२**. वही, खण्ड ९, पृ. ३५३

सांसारिक जीवन में भगवत्प्राप्ति

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विविध विषयों पर अनेक विचारोत्तेजक लेख लिखे थे, जो उसके विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी, जगदलपुर से साभार गृहीत हुआ है। - सं.)

यह प्रश्न बहुधा मनुष्य के मन में उठा करता है कि क्या सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भगवान को पाया जा सकता है? इसका उत्तर यदि थोड़े से शब्दों में देना हो, तो कहा जा सकता है कि यदि सांसारिक जीवन धर्म का अविरोधी हो, तो अवश्य वह व्यतीत करते हुए भगवत्प्राप्ति की जा सकती है। वस्तुतः भगवान तो हमारे भीतर विद्यमान हैं और वे हमें सतत प्राप्त हैं। पर जिसके माध्यम से हमें उस सत्य की प्रतीति करनी है, उस मन के मैला होने के कारण हमें वे अप्राप्त लगते हैं। उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि मैं दर्पण में अपने को देखता हूँ और दर्पण में तह-की-तह धूल जमी हुई है। तो मैं अपना प्रतिबिम्ब उसमें नहीं देख पाऊँगा। जैसे- जैसे मैं दर्पण की धूल साफ करूँगा, वैसे-वैसे मुझे उसमें अपना प्रतिबिम्ब अधिकाधिक साफ दिखाई पड़ेगा और जब धूल पूरी तरह साफ हो जायेगी, तब मैं जैसा हूँ ठीक वैसा ही दर्पण में दिखाई दूँगा। इसी प्रकार भगवान को देखने की बात है। हम अपने मन के दर्पण में भगवान को देखते हैं, उनकी प्राप्ति करते हैं। मन-दर्पण के मैला होने पर भगवान के हमारे अपने भीतर होते हुए भी वे नहीं दिखाई पड़ते। मन-दर्पण के साफ होते ही वे जैसे हैं, वैसे ही भीतर प्रत्यक्ष होते हैं। इसी को भगवत्प्राप्ति कहा जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि मन-दर्पण कैसे साफ हो? क्या उसे साफ करने के लिए हमें संसार को छोड़कर कहीं जंगल में जाना पड़ेगा? नहीं, वह तो नहीं करना होगा, पर हमें अपना सांसारिक जीवन इस प्रकार बिताना होगा, जिससे मन-दर्पण पर और मैल न जमे, बल्कि पहले की जमी मैल धीरे-धीरे साफ हो। सांसारिक जीवन बिताने की मूलतः दो पद्धतियाँ हैं। एक पद्धति तो वह है, जहाँ मनुष्य के सामने जीवन का कोई उच्चतर लक्ष्य नहीं होता, वह पशु-वृत्ति से ऊपर नहीं उठ पाता और मात्र इन्द्रिय-भोगों का जीवन व्यतीत करता है और दूसरी पद्धति वह है, जहाँ मनुष्य भगवत्प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य मानता है और इसलिए संसार की अपनी समस्त क्रियाओं को तदनुरूप मोड़ देता है। पहली पद्धति से भगवान् नहीं मिलते, क्योंकि मनुष्य उन्हें नहीं चाहता, वह मात्र भोग-सुख चाहता है। दूसरी पद्धति से अवश्यमेव भगवान् की प्राप्ति होती है, क्योंकि मनुष्य अपने सांसारिक कर्मों को इस प्रकार करता है, जिससे मन-दर्पण साफ होता जाता है।

श्रीरामकृष्ण से जब किसी ने पूछा कि क्या संसार में रहकर भगवान को पाया जा सकता है, तो उन्होंने उत्तर में कहा – हाँ। पर साथ ही यह कहना वे नहीं भूले कि यह तो तभी सम्भव है, जब तुम तो संसार में रहो पर संसार तुममें न रहे, जैसे नाव तो पानी में रहती है पर पानी नाव में नहीं रहता। यदि पानी नाव में रहने लगे तो नाव डूब जाएगी। इसी प्रकार यदि संसार मनुष्य में रहने लगे, तब तो सांसारिकता मनुष्य को डूबो देगी। प्रश्न उठता है कि हम तो संसार में रहें पर संसार हममें न रहे, यह कैसे सम्भव हो सकता है? गीता उत्तर देते हुए कहती है कि उस उपाय का नाम है कर्मयोग। कर्मयोग वह रसायन है, जो हमें कमलपत्रवत् संसार-जल से अलिप्त रखता है। वैसे तो हमारा हर सांसारिक कर्म हमारे मन-दर्पण पर संस्कार की धूल जमा देता है, पर जब हम योग का भाव लेकर कर्म करते हैं, तो कर्म फिर कर्मयोग बन जाता है और मन-दर्पण की धूल को साफ करने का सक्षम साधन हो जाता है।

कर्मयोग का मतलब है – कर्म, अकर्म और विकर्म के भेद को समझकर अकर्म और विकर्म का त्याग कर देना तथा कर्म को ईश्वर-समर्पित बुद्धि से करना। कर्म का मतलब है, कर्तव्य-कर्म। मनुष्य जिस स्थान पर है, वहाँ उसके लिए जो करना उचित है, उसे कर्म कहते हैं। अकर्म का तात्पर्य है आलस्य, प्रमाद, कर्म में उत्साह का अभाव। और विकर्म का अर्थ है – विपरीत कर्म, शास्त्र-निन्दित, समाज-निन्दित अशुभ कर्म। तो, कर्मयोग कहता है कि विकर्म और अकर्म से बचो तथा कर्म का सम्पादन करो, और वह भी भगवत्समर्पित बुद्धि से। अर्थात् कर्म करते हुए उस भावना को मन में मजबूत करो कि तुम अपना कर्म का कर्तापन और फल का भोक्तापन प्रभु को सौंप दे रहे हो एवं तुम उनके हाथों यन्त्रमात्र हो। इस भावना से युक्त होकर सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए भी मनुष्य ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है। ❖❖❖
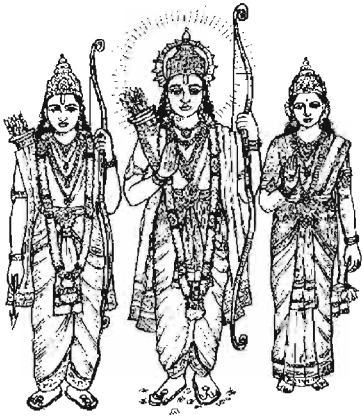
श्री हनुमत्-चरित्र (३/२)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. के अप्रैल-मई में रामकृष्ण आश्रम, राजकोट के तत्त्वावधान में पण्डितजी के जो प्रवचन हुए थे, 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से इन्हें लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य किया है श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी ने।

धृतराष्ट्र मूर्तिमान मोह और दुर्योधन अभिमान है। भगवान ने कर्ण से प्रश्न किया – "तुम सूर्य के, प्रकाश के, ज्ञान के पुत्र हो; क्या तुम्हारी श्रेष्ठता इसी में है कि तुम सम्मान पाने के लिये मोह तथा अभिमान के पीछे चलो? अभिमान के विजय के लिये प्रयत्न करो?" यह एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सूत्र है, जिसे बहुत कम लोग समझ पाते हैं और इसीलिये कभी-कभी कह देते हैं कि कर्ण के प्रति बड़ा अन्याय हुआ।

इस पर इस प्रकार विचार कीजिये। मान लीजिये कि यदि कोई सन्त आपसे कहें कि काम, क्रोध, लोभ आदि का साथ छोड़ दो और आप यह उत्तर दें कि बचपन से जिनका साथ दिया है, उनको कैसे छोड़े; तब तो आप बुराई को कभी छोड़ ही नहीं सकते। ठीक है, क्रोध का साथ दीजिये, जीवन भर क्रोध करते आये हैं, तो क्रोध का साथ नहीं छोड़ना है। जीवन भर लोभ के साथ रहे, इसलिये लोभ का साथ नहीं छोड़ना है। काम ने कभी जीवन में साथ नहीं छोड़ा, तो अब हम उसे कैसे छोड़ दें, हम उसी का साथ देंगे। भगवान हँसकर कहते हैं – जब तुम्हें बुराई का साथ नहीं छोड़ना है, तो जो परिणाम होना है, वह तो तुम जानते ही होगे।

यह एक बहुत ही सूक्ष्म तत्त्व है। धर्म इसलिये नहीं जीतता कि धर्म के मूल में भक्ति और भगवान के प्रति उतना प्रेम नहीं होता, जितना अभिमान के प्रति होता है। ज्ञान यदि हारता है, तो इसलिये हारता है कि ज्ञान का भगवान की अपेक्षा अभिमान से कहीं अधिक प्रेम होता है।

यह अभिमान ही बालि का सबसे बड़ा शत्रु है। वह अभिमान के कारण रावण को हरा देता है, रावण को बगल में दबा लेता है; और इतना ही नहीं, छह महीने तक घूम-घूम कर वह सबको दिखाता फिरता है। संसार में जो लोग अभिमानवश धर्म करते हैं, वे बगल में प्रमाण-पत्र दबाये हुये घूम-घूमकर यही दिखाने कि चेष्टा करते हैं कि हम कितने बड़े धर्मात्मा हैं। यही अभिमानी व्यक्ति का स्वभाव है। बालि एक ऐसे धार्मिक व्यक्ति का प्रतीक है, जिसमें सद्गुण है, सत्कर्म है, पुण्य है, सब कुछ है, पर साथ ही अभिमान है। बड़ी सुन्दर बात आती है, पहले तो भगवान राम ने बालि पर बाण चला दिया और बाद में जब उसका अभिमान नष्ट हो गया, तो भगवान एक क्षण में बदल गये। उन्होंने बालि के सिर पर हाथ रख दिया और बोले – तुम जीवित रहो –

अचल करौं तनु राखहु प्राना ।। ४/१०/२

आश्चर्य की बात! ये राम कैसे सत्यवादी हैं? महाभारत काल में ऐसे सत्यवादी बहुत थे कि एक बार मुख से जो निकल गया, वह ठीक हो या गलत हो, वह होना ही चाहिये। आज भी बहुत-से लोग सत्य का यही अर्थ लेते हैं कि जो मुँह से निकल जाय, बस उसको करना ही है। उचित -अनुचित का प्रश्न ही नहीं उठता। महाभारत का तो सारा काल ही सत्य की इसी व्याख्या से परिपूर्ण था – जिसके मुँह से जो निकल गया, उसे वह करेगा ही। भगवान राम ऐसे सत्यवादी नहीं थे। उन्होंने सुग्रीव से कह दिया – मैं बालि को एक ही बाण से मारूँगा –

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान ।। ४/६

फिर भगवान ही अब बालि से कह रहे हैं – जीवित रहो। जो बेचारे यह सोचते हैं कि भगवान तो बदल गये, वे सोचें कि भगवान ने ऐसा क्यों कहा? इसका उत्तर देने के लिये एक दृष्टान्त लिया जाय। मान लीजिये कि आपके शरीर में कोई फोड़ा हो जाय और आप डॉक्टर के पास जायँ। फोड़े की जाँच-पड़ताल करने के बाद डॉक्टर कहे कि हम कल ऑपरेशन करेंगे। मान लीजिये कि रात को ही आपका फोड़ा फूट जाय, ठीक हो जाय। अगले दिन जब आप जाकर डॉक्टर को बतावें कि फोड़ा तो फूट गया और डॉक्टर यह कहे कि भले ही फोड़ा फूट गया है, ठीक हो गया है, परन्तु सत्य की रक्षा के लिये मुझे तो ऑपरेशन करना ही होगा। क्या आप प्रसन्न होंगे कि चलो, महान् सत्यवादी डॉक्टर से पाला पड़ा है? उल्टे आपको उस डॉक्टर पर आश्चर्य होगा कि यह कितना बड़ा मूर्ख है? जिस उद्देश्य से ऑपरेशन करना था, यदि वह पूरा हो गया, तो अब क्या हमारी बात रहे, इसीलिये ऑपरेशन करना होगा? भगवान राम का उद्देश्य बालि के पुण्य को नहीं, बल्कि उसके पुण्य के अभिमान को मारना था। अब जब उसके अभिमान का फोड़ा ही फूट गया, अभिमान ही नष्ट हो गया, तो अब हम क्यों वैसा करे, क्यों उसकी मृत्यु-कामना करें?

यहाँ संकेत यह है – यदि यह सोचकर कि पुण्य से अभिमान होता है, आप पुण्य करना ही छोड़ दें, दान करना

इसलिये बन्द कर दें कि दान से अभिमान होता है, सत्कर्म इसलिये न करें कि सत्कर्म से अभिमान होता है, तो इससे बढ़कर दुर्भाग्य क्या होगा? महात्मा गाँधी के जीवन के एक संस्मरण से युक्त उनका एक पत्र प्रकाशित हुआ था, उसे मैंने पढ़ा है। किसी महिला ने गाँधीजी को पत्र लिखा कि भगवान का भजन तो पूर्णत: निष्कपट भाव से, एकाग्र मन से करना चाहिये और मैंने देख लिया कि मेरा मन तो भजन में लगता ही नहीं और बिना एकाग्र मन के भजन करने का अर्थ होता है छल-कपट करना, इसलिये मैंने भजन ही करना छोड़ दिया। महात्माजी ने इसका बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा – "देवी, आपने बड़ा विचित्र अर्थ ले लिया। आपको छोड़ना चाहिये था कपट को और छोड़ दिया भजन को। इसका अर्थ यह है कि सत्कर्म करने से अभिमान हो, तो अभिमान छोड़ना होगा। सत्कर्म को छोड़ना, यह कौन-सी बुद्धिमत्ता है?

अत: बालि में सुग्रीव के प्रति विरोध-भावना अभिमान के कारण है। दूसरी ओर सुग्रीव को देखें, तो बालि की तुलना में सुग्रीव दुर्बल है। दोनों भाइयों के स्वभाव में एक बहुत बड़ा अन्तर है और वह यह कि बालि कभी भागता नहीं, हर चुनौती का सामना करने के लिये तैयार है और सुग्रीव जीवन भर भागता ही रहा। बेचारा सुग्रीव यदि किसी कला में सबसे अधिक निपुण है, तो वह है भागना। गुफा के बाहर उसे भय लगा कि बालि को मारने के बाद मायावी हमें भी मार डालेगा, तो गुफा का मुख पत्थर से बन्द करके भाग चला –

सिला देइ तहँ चलेउँ पराई ।। ४/६/८

जब बालि ने उसे सिंहासन पर बैठे देखा और मारने दौड़ा, तब भी सुग्रीव भयभीत होकर भाग निकला –

तब सुग्रीव बिकल होइ भागा ।। ४/८/३

उसके जीवन में सर्वत्र भागना ही भागना दीख पड़ता है। यहाँ तक कि जब वह भगवान राम तथा लक्ष्मण को आते देखा, तो हनुमानजी से बोला – आप वहीं से संकेत द्वारा बता दीजियेगा कि ये कौन हैं। हनुमानजी ने पूछा – अगर ये बालि के भेजे हुये होंगे तो आप क्या करेंगे? सुग्रीव ने कहा – "आप जानते हैं कि हम तो एक ही कला में निपुण हैं – भागने की कला में। तो हम यहाँ से भी भाग खड़े होंगे।" यही लिखा हुआ है –

धरि बटु रूप देखु तैं जाई ।
कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ।।
पठए बालि होहिं मन मैला ।
भागौं तुरत तजौं यह सैला ।। ४/१/४-५

भागना, भागना और केवल भागना! आज की भाषा में इसे कहेंगे – पलायनवादी। कुछ लोग परिस्थितियों से लड़ते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो कठिन परिस्थिति आने पर मुँह चुराते हैं, भाग खड़े होते हैं। अब आश्चर्य की बात यह है कि जो हर परिस्थिति का सामना करने वाला है, कभी पीठ नहीं दिखाने वाला है, उस पर तो भगवान राम ने बाण चला दिया; और जो इतना बड़ा भगोड़ा है, उसकी सहायता की। लक्ष्मणजी को भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। जब भगवान राम ने सुग्रीव से मित्रता की और उनका आत्म-चरित्र सुना – सारे जीवन भागना, भागना और भागना। सुग्रीव के जाने के बाद लक्ष्मणजी ने भगवान राम से पूछा – प्रभो, आपको गिद्धराज (जटायु) की बात याद आती है? सुनकर प्रभु की आँखों में आँसू आ गये। वे बोले – "भाई लक्ष्मण, क्या कहूँ, गिद्धराज को खोकर तो मानो मैंने अपने पिता को दूसरी बार खो दिया, पर तुमने यह प्रश्न क्यों किया?" लक्ष्मणजी तो कुछ दूसरे ही उद्देश्य से पूछ रहे थे। उन्होंने कहा – अच्छा यह बताइये, यह सुग्रीव आपको कैसा लगता है। प्रभु मुस्कराये। संकेत मानो यह था कि एक तो वे गिद्धराज थे, जिन्होंने सीताजी की रक्षा करने के लिये अपने प्राण दे दिये, शरीर में शक्ति रहते उनका हरण होने नहीं दिया। और दूसरी ओर सुग्रीव ने आपको जो अपनी कथा सुनाई थी, उसमें था कि मैंने देखा कि रावण सीताजी का हरण करके ले जा रहा है, कोई देवी हैं रावण जिनका हरण करके ले जा रहा है। उस देवी ने पुकारा, ऊपर से वस्त्र-आभूषण भी डाल दिये और वे वस्त्राभूषण सुग्रीव ने लाकर भगवान को दे दिये। जब लक्ष्मणजी ने सुना तो सोच रहे थे कि कहाँ वे वीर गिद्धराज, जो बूढ़े होते हुये भी लड़कर मर गये और कहाँ यह कायर सुग्रीव, जो बड़े आनन्द से सुना रहा है कि हाँ, मैंने देखा कि रावण सीताजी का हरण करके ले जा रहा है। तो लक्ष्मण जी ने पूछा – महाराज, सुग्रीव आपको कैसा लगता है?

मैं आपको एक बात बताऊँ – भगवान राम की महानता किसमें है! ईश्वर तो वे हैं ही, परन्तु इसके साथ-साथ आप यह भी न समझ लीजियेगा कि उनके पास जितने व्यक्ति थे, सभी एक ही तरह के थे। उनके पास हनुमानजी के समान बाल-ब्रह्मचारी तथा बलवान थे, तो सुग्रीव जैसे कायर भी थे। भगवान के पास आपको हर तरह के व्यक्ति मिलेंगे। उनके पास सभी तरह के लोग थे। प्राय: सुनने में आता है कि अमुक व्यक्ति अयोग्य है। ऐसा हम कई व्यक्तियों के लिये सोच लेते हैं। परन्तु हमारे यहाँ एक ऐसा वाक्य बताया गया है कि कोई अयोग्य नहीं होता, उसकी योग्यता को परखकर उसका उपयोग करने वाला ही दुर्लभ है –

अयोग्यो पुरुषो नास्ति प्रयोक्ता तत्र दुर्लभः ।।

इसका क्या अर्थ है? व्यक्ति जिस कार्य के योग्य नहीं है, यदि वही कार्य उसे दिया जायेगा, तो अयोग्य सिद्ध होगा। परन्तु यदि यह पता लगा लिया जाय कि इसमें कोई योग्यता है क्या! और उसी योग्यता के अनुरूप कार्य में उसे लगा दिया जाये, तो वह अयोग्य व्यक्ति भी योग्य सिद्ध होगा।

लक्ष्मणजी ने कहा – "तो ऐसे थे गिद्धराज, जिनके लिये आप इतने आँसू बहाते हैं! अब आप यह बताइये कि आपको सुग्रीव कैसा लगता है?" प्रभु ने हँसकर कहा – "गिद्धराज के बारे में जब मैं सोचता हूँ तो लगता है कि वे कितने बड़े प्रेमी थे कि उन्होंने अपना प्राण तक दे दिया। और सुग्रीव की ओर देखता हूँ तो लगता है कि ये कितने बड़े राजनीतिज्ञ हैं! इन्होंने भी लड़कर प्राण दे दिया होता, परन्तु इन्होंने निर्णय किया कि पहले सीताजी की वस्तुएँ तथा सन्देश श्रीराम के पास पहुँचा दें और तब मिलकर रावण पर आक्रमण करें। लगता है कि महा प्रधानमंत्री पद के योग्य तो ये ही हैं। लक्ष्मणजी ने कहा – आपकी दृष्टि में तो कोई अयोग्य सिद्ध ही नहीं होगा।

परन्तु बात बिल्कुल उल्टी है। बालि और सुग्रीव की कोई तुलना नहीं है। आगे चलकर जब भगवान राम ने सुग्रीव से कहा – भाई, जरा बालि को लड़ने के लिये उसे चुनौती दो, तो सुग्रीव ने यह सोचकर कुछ साहस किया कि पीछे भगवान तो खड़े ही हैं और उसने जाकर बालि को चुनौती दे दी। बालि का तो यह स्वभाव ही है कि वह कभी चुनौती को अस्वीकार करता ही नहीं। तारा ने उसके चरण पकड़ लिये, बोली –

सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा।
ते द्वौ बन्धु तेज बल सींवा।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा।
कालहु जीति सकहिं संग्रामा।। ४/७/२८-२९

बालि ने कहा – कोई भी हों और कुछ भी हो, मैं तो जाऊँगा ही। फिर जब बालि-सुग्रीव का युद्ध हुआ, तो युद्ध में बालि का जो पहला मुक्का सुग्रीव को लगा, तो फिर वही स्वभाव – विकल होकर फिर भाग खड़ा हुआ –

तब सुग्रीव बिकल होई भागा। ४/८/३

लक्ष्मणजी मुस्कुराते हुए बोले – "आप इसे चाहे जितना भी मित्र बनावें, चाहे जितना भी सम्मान दें, परन्तु इसका स्वभाव तो अब तक छूटा नहीं है। आज भी वही भागना दीख रहा है। आपने भेजा है, आप पीछे खड़े हैं, तो भी भाग रहा है।" भगवान ने कहा – नहीं लक्ष्मण, तुमने देखा नहीं, अब इसके भागने में अन्तर पड़ गया है। – कैसा? बोले – पहली बार जब मायावी राक्षस से डरकर भागा, तो घर की ओर भागा, घर में छिपा और दूसरी बार जब बालि से डरकर भागा, तो ऋष्यमूक पर्वत में जाकर छिपा। ऋष्यमूक पर्वत अर्थात् मूर्तिमान सत्संग, जहाँ पर अभिमान-बालि का प्रवेश नहीं है। जहाँ सत्संग है, वहाँ पर अभिमान नहीं आ सकता, इसीलिये भगवान ने कहा – "देखो, पहली बार घर की ओर भागा, दूसरी बार सत्संग की ओर भागा और तीसरी बार भी भागा, मगर किधर भागा? मेरे पास आया न! मेरी दृष्टि में भागना बुरा नहीं है। भागना भी उपयोगी हो सकता है। महत्त्व इसका है कि अन्तत: वह भागकर जाता किधर है। बाद में बात आती है, भगवान ने बालि का वध कर दिया और सुग्रीव को राजा बना दिया। पर सुग्रीव भोगों को पाकर भगवान को भूल गये, सीताजी का पता लगाना भूल गये। तब एक दिन प्रभु बोले – लक्ष्मण, मैंने तो सोचा है कि जिस बाण से मैंने बालि को मारा था, उसी बाण से इस मूर्ख सुग्रीव का भी वध करूँगा –

जेहिं सायक मारा मैं बाली।
तेहिं सर हतौं मूढ़ कहँ काली।।
४/१८/५

लक्ष्मणजी मन-ही-मन हँसे कि चलो, अन्त में प्रभु को भी वही निर्णय करना पड़ा, जिसका यह पात्र है और उनसे बोले – यह कष्ट आप क्यों करेंगे; बस, मुझे आज्ञा मात्र दे दीजिये। प्रभु ने हँसकर कहा – क्या तुम समझते हो कि मैं सचमुच ही सुग्रीव को मारने जा रहा हूँ। – आप ही ने तो अभी कहा। – "नहीं, देखो, वह तो बड़े डरपोक स्वभाव का है, बालि के डर से ही मेरी शरण में आया था। बालि मर गया तो उसका डर छूट गया। उसे मारना नहीं है, केवल उसे थोड़ा डरा देना है।" आप पूछेंगे कि भय अच्छा है या अभयता? तो कोई भी भाषण में यह कहेगा कि निडर होना, निर्भय होना ही अच्छा है। परन्तु जिसका डरना ही स्वभाव है, वह क्या आपके कहने से ही निर्भय हो जायेगा? निडर होना अच्छा है, मगर जो स्वभाव से ही डरपोक है, वह क्या करेगा? भगवान बोले – उसे थोड़ा डराओ। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा – जो आज्ञा। परन्तु प्रभु ने तुरन्त लक्ष्मणजी का हाथ पकड़ लिया, बोले – याद रखना, वह जितना डरपोक है, उतना ही बड़ा भगोड़ा भी है। उसे कहीं ऐसा न डरा देना कि कहीं और भाग जाय। ऐसा डराना कि मेरी ओर आये –

तब अनुजहि समुझावा रघुपति करुनासींव।
भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।। ४/१८

हर वृत्ति का – भय की वृत्ति का भी सदुपयोग हो सकता है – यही रामायण का महामंत्र है। **निर्भयता का सदुपयोग हनुमानजी के चरित्र में है और भय का सदुपयोग सुग्रीव के चरित्र में है।** परन्तु इस भय के सदुपयोग की प्रेरणा देने वाला भी कोई होना चाहिये। यदि सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर
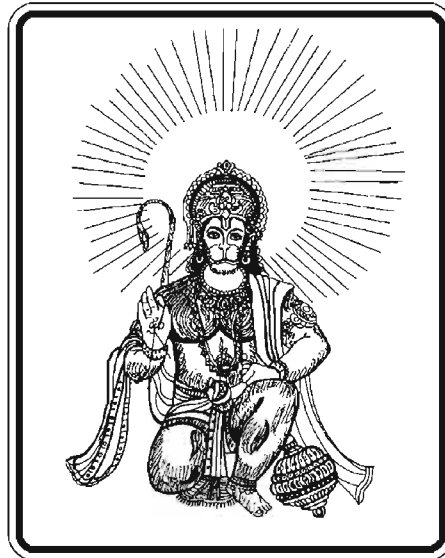
अकेला होता, तब तो वह श्रीराम और लक्ष्मणजी को आते देखकर अपने स्वभाव से ही भाग खड़ा होता। परन्तु वह क्यों नहीं भागा? इसलिये कि यद्यपि उसके जीवन से पत्नी-राज्य आदि सब कुछ छिन गया था, तथापि उसने हनुमानजी का साथ नहीं छोड़ा और हनुमानजी ने भी उसका साथ नहीं छोड़ा। अन्तर इतना ही है। हनुमानजी सन्त हैं और शंकर के अवतार के रूप में मूर्तिमान विश्वास हैं। जीवन से सब कुछ चला जाय, पर विश्वास न जाने पाये। सब कुछ छूट जाय, पर सत्संग और सन्त का आश्रय न छूटे। सुग्रीव में अनेक कमियों के होते हुये भी उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसे सन्त पर भरोसा है।

उन लोगों का बड़ा दुर्भाग्य है, जिनकी न अपनी आँखें ही ठीक हैं और न दूसरों की आँखों पर भरोसा है। इसीलिये हनुमानजी के बाद जब अंगद रावण की सभा में गये, तो अंगद ने बड़े ध्यान से बड़ी देर तक रावण के चेहरे को देखा। रावण ने इस पर नाराज होकर पूछा – बड़े ध्यान से घूर-घूरकर क्या देख रहा है? अंगद ने कहा – हनुमानजी ने बताया था कि लंका में तुम्हें एक बड़ी अनोखी चीज देखने को मिलेगी। – क्या? बोले – वहाँ एक बीस आँखवाला रहता है। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था, पर आज मुझे लगता है कि तुम केवल बीस आँखोंवाले अन्धे ही नहीं, बीस कानोंवाले बहरे भी हो। अन्धे इसलिये हो कि ईश्वर को देख नहीं पा रहे हो। परन्तु कान तो है न! अगर दिखाई न दे रहा हो, तो दूसरे जो कह रहे हैं, उस पर विश्वास करना चाहिये। जिसे अपनी आँख पर विश्वास न हो, वह दूसरों की आँख से देखकर विश्वास करें।

दशरथजी ने जनकपुर के दूतों से पूछा था – क्या तुमने अपनी आँख से देखा, भलीभाँति देखा? उसको देखने के लिये, जो आँखें चाहिये, वे आँखें हमारे पास हैं या नहीं। सुग्रीव को पता था कि उसकी आँखें बहुत उपयोगी नहीं हैं, इसलिये उसने हनुमानजी से कहा कि आप ही जाकर देखिये और बता दीजिये। आप जैसे कहेंगे, वैसा मैं मान लूँगा। यही है सन्त पर विश्वास, सन्त पर भरोसा और उस भरोसे के ही परिणामस्वरूप हनुमानजी जाते हैं, बहुत गहराई से देखते हैं और देखने के बाद पहचानते हैं। पहचानने के बाद स्वभाव का पता चलता है और स्वभाव का पता लगने के बाद उन्होंने तुरन्त प्रभु से कहा – आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये, ताकि मैं आपको ले चलूँ। प्रभु बोले –अभी तो तुम मुझसे कह रहे थे कि आप साक्षात् ईश्वर हैं, तो क्या कोई ईश्वर को पीठ पर उठा सकता है? हनुमानजी ने कहा – "प्रभो, मैं भी यही समझता था, मगर जब आपने कहा कि नहीं, हम ईश्वर नहीं, दशरथ के पुत्र हैं। यदि आप कह देते कि हाँ, मैं ईश्वर हूँ, तो मैं कभी भी न कहता कि आप मेरी पीठ पर बैठिये, पर जब आपने ही कह दिया कि दशरथ के पुत्र हैं, तो मुझे लगा कि दशरथजी ने तो आपको गोद में उठाया ही होगा। तो आप ऐसे ईश्वर हैं, जिन्हें गोद में उठाया जा सकता है। आप वह ईश्वर नहीं हैं जिसे कोई न उठा सके। तब मेरा साहस हुआ और इसीलिये मैं आप से कह रहा हूँ कि आप मेरी पीठ पर बैठ जाइये।"

प्रभु ने कहा – दशरथजी ने मुझे गोद में उठाया, तो तुम भी मुझे गोद में उठा लो। हनुमानजी बोले – नहीं महाराज, मैं तो ऐसा नहीं कर सकता। – क्यों? बोले – "दोनों में अन्तर यह है कि यदि कोई व्यक्ति किसी को गोद में उठाये, तो उसे सँभाल कर पकड़े रहना पड़ता है कि कहीं वह गोद से गिर न पड़े, परन्तु यदि कोई किसी को अपनी पीठ पर बैठा ले, तो पीठ पर बैठे रहनेवाला ही पकड़े रहता है कि कहीं मैं गिर न पड़ूँ। इसीलिये महाराज मैं तो चाहता हूँ कि आप मेरी पीठ पर बैठकर मुझे पकड़े रहिये। दशरथजी आप को पकड़े रह सकते थे, पर मैं तो चाहता हूँ कि आप ही मुझे पकड़े रहें। और प्रभो, मैं एक ऐसे व्यक्ति से आपकी मित्रता कराने के लिये ले जा रहा हूँ कि आप अभी से पकड़े रहने की आदत बना लीजिये। जीवन भर आपको ही उसे पकड़े रहना पड़ेगा, वह कभी आपको पकड़े रहनेवाला नहीं है।"

इस प्रकार सुग्रीव सन्त की कृपा से प्रभु को पा लेता है। हनुमानजी रूपी सन्त ईश्वर को पा लेता है, पहचान लेता है, उसके स्वभाव को जान लेता है, पर उसका उपयोग केवल अपने लिये नहीं, साधारण-से व्यक्ति के लिये भी करता है, उसे भगवान से मिला देता है और यह हनुमानजी के चरित्र का एक अलौकिक पक्ष है।

❖ (क्रमशः) ❖
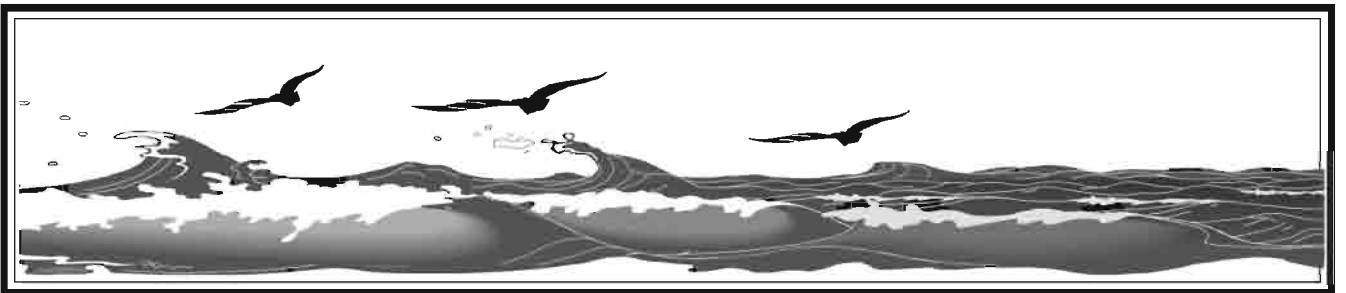
भागवत की कथाएँ (८)

स्वामी अमलानन्द

(श्रीमद् भागवतम् पुराणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। उसकी कथाओं ने युग-युग से मनुष्य को धर्म के प्रति आस्था-विश्वास दिया है जिससे भारतवासियों ने दृढ़ आत्म-विश्वास प्राप्त किया है। उन्हीं कथाओं में से लेखक ने कुछ का चयन करके सरल भाषा तथा संक्षेप में पुनर्लेखन किया है। 'विवेक-ज्योति' के लिये इस ग्रन्थ का सुललित अनुवाद किया है छपरा के डॉ. केदारनाथ लाभ, डी. लिट्. ने। – सं.)

नवम स्कन्ध

अम्बरीष और दुर्वासा

भागवत में अनेक अनमोल कथाएँ हैं। शुकदेव एक के बाद एक उन्हें कहते जाते हैं और राजा परीक्षित सुनते जाते हैं।

परम पुरुष के नाभिकमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। मरीचि उनके मानस-पुत्र थे; मरीचि के पुत्र थे कश्यप। कश्यप के पुत्र थे वामनदेव – जिनकी कथा इसके पूर्व कही गयी। इसी वंश में भक्तराज अम्बरीष ने जन्म लिया था।

अम्बरीष के पिता नाभाग के बारे में थोड़ा कह लूँ। नाभाग बड़े सज्जन व्यक्ति थे। गुरुगृह में काफी काल तक पढ़ने-लिखने के बाद जब वे अपने घर लौटे, तब तक उनके भाइयों ने सारी धन-सम्पत्ति आपस में बाँट ली थी। उनके हिस्से के रूप में बूढ़े पिता को रख छोड़ा था। जब नाभाग अपने पिता के पास गए, तो पिता बोले – "चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें दो मंत्र सिखा देता हूँ। देश के राजा जहाँ यज्ञ कर रहे हैं, वहाँ जाकर इन दो मंत्रों (सूक्तों) की आवृत्ति करने से ही ऋषिगण तुम्हारा खूब आदर-सत्कार करेंगे। सचमुच ऐसा ही हुआ। ऋषियों ने नाभाग पर अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें यज्ञ की कुछ दक्षिणा और काफी धन-रत्न दिए।

इन धन-रत्नों के वास्तविक अधिकारी रुद्रदेव थे। रुद्रदेव बोले – "ये सब मेरे प्राप्य हैं। यदि नहीं मानते, तो तुम्हारे पिता को मध्यस्थ बनाकर फैसला करा लेते हैं।" पिता ने सारी बातें सुनने के बाद रुद्रदेव के पक्ष में ही निर्णय दिया। नाभाग ने पिता का आदेश शिरोधार्य करके सारे धन-रत्न रुद्र-देव को अर्पित कर दिये। इस पर खूब प्रसन्न होकर रुद्रदेव ने सब कुछ नाभाग को लौटा दिया। नाभाग के दिन अच्छी तरह कटने लगे। उन्हें इतनी धन-सम्पत्ति मिली, जितनी कई राजाओं के पास भी नहीं थी। यह सम्पत्ति यथासमय उनके पुत्र अम्बरीष को मिली। परन्तु उन्हें धन-सम्पत्ति से मोह न था। उनका मन श्रीहरि के चरण-कमलों में लगा रहता था।

वे अपना अधिकांश समय उन्हीं की पूजा-अर्चना में बिताते। इससे श्रीहरि (भगवान विष्णु) ने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्र को आदेश दिया कि वह सदा अम्बरीष की रक्षा करता रहे। एक दिन अम्बरीष ने द्वादशी व्रत का अनुष्ठान किया। तीन रात उपवास करने के बाद जब वे व्रत के पारण का आयोजन कर रहे थे, तभी दुर्वासा मुनि वहाँ आ पहुँचे। दुर्वासा को भोजन कराए बिना राजा अम्बरीष खा नहीं सकते थे। परन्तु दुर्वासा यमुना में स्नान करने गए, तो फिर लौटे नहीं। व्रत-पारण का समय बीतते देखकर राजा और क्या करते? उन्होंने श्रीहरि का स्मरण कर साधारण जल का पान करके अपने व्रत की रक्षा की, परन्तु अन्न नहीं खाया। ठीक उसी समय दुर्वासा वापस आ पहुँचे। यह सुनकर वे क्रुद्ध हो उठे कि राजा ने जल पीया है और उन्होंने अपने सिर की जटा से एक भयंकर दैत्य को उत्पन्न किया। राजा डरे नहीं। जरा भी हिले-डुले बिना वे श्रीहरि को पुकारने लगे। तभी सुदर्शन-चक्र आकर उपस्थित हुआ और वह दैत्य जलकर राख हो गया। इसके बाद सुदर्शन-चक्र दुर्वासा की ओर दौड़ा।

दुर्वासा प्राणों के भय से स्वर्ग, मर्त्य व पाताल में दौड़ने लगे। दुर्वासा जहाँ जाते, सुदर्शन-चक्र भी उनके पीछे वहीं पहुँच जाता। दुर्वासा ऋषि जब ब्रह्मा के पास पहुँचे, तो ब्रह्मा बोले – "बचने का कोई उपाय नहीं है। तुम कैलास जाओ, यदि कैलासपति तुम्हारी रक्षा कर सकें, तभी बच सकोगे।" दुर्वासा कैलास गए। शंकरजी ने दुर्वासा से कहा – "तुम वैकुण्ठ जाओ, श्रीहरि के सिवा अन्य कोई भी तुम्हारा उद्धार नहीं कर सकता।" दुर्वासा वैकुण्ठपति की शरण में पहुँचे। तब श्रीहरि ने कहा – "मैं भक्त के अधीन हूँ। जो मेरी शरण में आते हैं, मैं उनका भला कैसे त्याग कर सकता हूँ? साधु-भक्त मेरे हृदय हैं; मैं तो उन लोगों के अलावे और कुछ भी नहीं जानता।" विष्णु और भी बोले – "तपस्या तथा विद्या दोनों ही ब्राह्मण के लिए परम हितकर हैं। परन्तु जो अहंकारी हैं उनमें ये उल्टा फल उत्पन्न करते हैं। इसीलिए जिनके प्रति अपराध हुआ है, तुम शीघ्र उन परम भक्त अम्बरीष के पास जाओ और उनसे क्षमा-याचना करो, तभी तुम्हें अपने अपराध के लिए क्षमा मिल सकेगी।"

भगवान का आदेश मानकर दुर्वासा अम्बरीष के पास गये और उन्हें अपने मन की पीड़ा बतायी तथा उनके दोनों पाँव पकड़ कर क्षमा-याचना करने लगे। ऋषि के द्वारा इस प्रकार पाँव पकड़े जाने पर राजा बड़े संकुचित हुए तथा सुदर्शन-चक्र की स्तुति करके उसे प्रसन्न किया। दुर्वासा की सुदर्शन-चक्र के आक्रमण से रक्षा हुई। उन्होंने कहा – "महाराज! मैंने तुम्हारे साथ अनुचित व्यवहार किया है, तो भी तुमने मेरे कल्याण के लिए प्रयास किया। आज मैंने भगवान के भक्त

१. साधवो हृदयं मह्यं साधुनां हृदयस्त्वहम्।
मदन्यत् ते न जानन्ति, नाहं तेभ्यो मनागपि॥ ९/४/६८

की विलक्षण महानता देखी। तुम बड़े दयालु हो; मेरे अपराध पर ध्यान न देकर आज तुमने मुझे बचा लिया।''

महाराज अम्बरीष अब तक निराहार थे। वे दुर्वासा की प्रतीक्षा कर रहे थे। अब उन्होंने मुनि को भरपेट भोजन करा कर परितृप्त किया और तदुपरान्त स्वयं अन्न ग्रहण किया।

ययाति और देवयानी

दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य की पुत्री थी देवयानी और राजा वृषपर्वा की पुत्री थी शर्मिष्ठा। दोनों में परस्पर खूब प्रेम था। परन्तु एक दिन स्नान के बाद राजकुमारी शर्मिष्ठा ने भूल से देवयानी की साड़ी पहन ली। इसके कारण उनमें आपसी मनमुटाव तथा वाद-विवाद भी हो गया।

राजकन्या इसे सह न सकी। आखिर उन्होंने भूल से ही तो देवयानी का वस्त्र पहन लिया था ! क्या इसी पर देवयानी उन्हें खरी-खोटी सुना देगी ! क्रोध में राजकुमारी ने देवयानी को एक कुँए में गिरा दिया और राजमहल को लौट गयीं।

इधर राजा ययाति शिकार करने आए और तपोवन के बीच में स्थित इस कुँए के पास जा पहुँचे। उन्होंने देवयानी का रोना सुना। राजा ने फौरन असहाय देवयानी को पहनने के लिये अपना दुपट्टा दिया और हाथ पकड़कर उसे कुएँ से बाहर निकाला। दोनों एक दूसरे को देखकर मोहित हो गए। ययाति ने देवयानी को विवाह का वचन देकर विदा ली।

कुँए से निकलने के बाद जब देवयानी ने पिता शुक्राचार्य के पास जाकर उनसे सारी बातें कहीं, तो उन्होंने क्रोध तथा अपमान से क्षुब्ध होकर दैत्य का राज्य त्यागने का निश्चय लिया। पर राजा (वृषपर्वा) ने आकर पाँव पकड़ते हुए उनसे क्षमा माँगी। दैत्यगुरु ने कहा – ''मैं एक शर्त पर क्षमा कर सकता हूँ। आपको देवयानी की इच्छा पूरी करनी होगी।'' देवयानी बोली – ''पिताजी मेरा जहाँ विवाह करेंगे, शर्मिष्ठा को अपनी सखियों के साथ मेरी दासी बनकर वहाँ जाना होगा। राजा वृषपर्वा के लिए यह बड़ी अपमानजनक शर्त थी, पर राज्य के हित के लिए उन्होंने यह शर्त मान ली।

देवयानी की याचना के अनुरूप शुक्राचार्य ने राजा ययाति के साथ उसका विवाह कर दिया और पूर्व शर्त के अनुसार राजकुमारी शर्मिष्ठा उन दोनों की दासी होकर देवयानी की ससुराल गयी। शुक्राचार्य ने ययाति को आदेश दिया – ''तुम शर्मिष्ठा से विवाह नहीं करोगे।''

यथासमय देवयानी पुत्रवती हुईं। पर शर्मिष्ठा पुत्र-सुख से वंचित थीं। उसने राजा ययाति से पुत्र के लिए याचना की। शुक्राचार्य का आदेश था कि ययाति शर्मिष्ठा से विवाह नहीं कर सकेंगे, तथापि भाग्य के योग से राजा उसकी कामना पूरी करने को बाध्य हुए। बाद में शर्मिष्ठा तीन पुत्रों की माँ बनीं।

शर्मिष्ठा के प्रति अपने पति को आसक्त देखकर देवयानी क्रुद्ध हुई और राजा ययाति को छोड़कर अपने पिता के घर जाने लगी। राजा देवयानी के प्रति बड़े आसक्त थे। वे उसे छोड़कर कैसे रहते? उन्होंने देवयानी से बहुत अनुनय-विनय किया और देवयानी के साथ वे शुक्राचार्य के घर में उपस्थित हुए। शुक्राचार्य को पहले से इसी की आशंका थी। अपनी पुत्री के दुर्भाग्य से विचलित होकर उन्होंने अपने जामाता को शाप दिया – ''तुम विश्वासघाती हो, तुमने मेरे आदेश का उल्लंघन किया है; तुम बूढ़े हो जाओ।''

क्षण भर के लिए शुक्राचार्य भूल गए थे कि यह शाप केवल उनके जमाई को ही नहीं, बल्कि उनकी अपनी पुत्री को भी लगेगा। राजा ययाति ने यह बात अपने श्वसुर को याद दिला दी। शुक्राचार्य थोड़े शान्त हुए और ययाति से बोले – ''यदि कोई युवक तुम्हारा बुढ़ापा ग्रहण करने को राजी हो, तो उसके यौवन से तुम अपने बुढ़ापे को बदल सकोगे।''

विषय-भोग के लिए लालायित राजा ने अपने बड़े पुत्र यदु को बुढ़ापा लेने के लिए अनुरोध किया। यदु इसके लिए तैयार नहीं हुए। सुख का भोग किये बिना मनुष्य विषयों का त्याग नहीं कर सकता। यदु की भाँति ही अन्य तीनों भाइयों ने भी पिता का अनुरोध अस्वीकार कर दिया। छोटे पुत्र पुरु ने सानन्द बुढ़ापा लेने को तैयार होकर कहा – ''जिन पिता के प्रसन्न होने से परमार्थ की प्राप्ति होती है, जिनसे इस देह का जन्म हुआ है, उन परम पूज्य पिता का प्रत्युपकार करने की क्षमता किसमें है? यह मेरा सौभाग्य है कि मैं यह सुयोग पा रहा हूँ।'' यह कहकर पुरु ने ययाति का बुढ़ापा ग्रहण कर लिया। इस प्रकार ययाति को पूर्ण यौवन मिला और उन्होंने एक हजार वर्षों तक यौवन का उपभोग किया। परन्तु भोग-वासना का शमन तो हुआ नहीं, बल्कि वह तो बढ़ती ही जा रही थी। तब यताति को बोध हुआ। अपनी पत्नी देवयानी को बुलाकर वे बोले – ''माया से मोहित होकर मुझे भले-बुरे का बोध नहीं रहा। भोग के द्वारा कभी भी कामनाएँ समाप्त नहीं होतीं। जैसे आग मे घी डालने से आग और भी धधक उठती है, वैसे ही सुख के भोग से कामना-वासना क्रमश: बढ़ती ही जाती है।[२] अत: जो अपना कल्याण चाहें, उन्हें यथाशीघ्र विषय-वासना का परित्याग कर देना चाहिए।''

पत्नी से ये बातें कहकर ययाति ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु को उसका यौवन लौटा दिया तथा उन्हें अपना पूरा राज्य सौंप दिया। ययाति स्वयं बुढ़ापा ग्रहण करके साधन-भजन करने हेतु वन में चले गए। देवयानी ने इस संसार को भगवान की माया समझकर श्रीकृष्ण में अपना मन एकाग्र किया और वासुदेव को प्रणाम किया – ''हे भगवान वासुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है; आप समस्त जीवों के अन्तर्यामी हैं, विराट्-पुरुष हैं, आपको मेरा नमस्कार है।'' ❖ (क्रमश:) ❖

---

२. न जातु काम: कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ ९/१९/१४

आत्माराम की आत्मकथा (४९)

स्वामी जपानन्द

(रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी स्वामी जपानन्द जी (१८९८-१९७२) श्रीमाँ सारदादेवी के शिष्य थे। स्वामी ब्रह्मानन्दजी से उन्हें संन्यास-दीक्षा मिली थी। उन्होंने बँगला में श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्यों तथा अपने अनुभवों के आधार पर कुछ प्रेरक तथा रोचक संस्मरण लिपिबद्ध किये थे। इसकी पाण्डुलिपि हमें श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर के सौजन्य से प्राप्त हुई है। हम इसका क्रमश: प्रकाशन कर रहे हैं। इसके पूर्व हम उनकी दो छोटी पुस्तकों – 'प्रभु परमेश्वर जब रक्षा करें' तथा 'मानवता की झाँकी' का धारावाहिक प्रकाशन कर चुके हैं – सं.)

मुम्बई होकर मीरज

राजकोट से एक मित्र के आमंत्रण पर मुम्बई गया। फिर मुम्बई से मीरज गया। वहाँ के टी.बी. सैनेटोरियम में एक गुजराती भक्त का लड़का इलाज करवा रहा था, उसे देखने गया था। यही भारत का सर्वश्रेष्ठ व्यवस्थावाला तथा सबसे सस्ता सैनेटोरियम था। वहाँ के डॉक्टरों का कार्य बहुत अच्छा था। देखकर काफी ज्ञान प्राप्त हुआ।

मीरज में ही एक परांजपे के साथ परिचय हुआ। ये ठाकुर के परम भक्त थे। इनके घर अतिथि हुआ। यहाँ के 'व्यायाम-मण्डल' तथा 'शंकराद्वैत-समिति' के तत्त्वावधान में हिन्दी में एक-एक व्याख्यान हुए। यह जीवन में पहली बार हिन्दी में व्याख्यान था। सामने अनेक श्रोता बैठे हुए थे। व्याख्यान सन्तोषजनक हुए थे। राजा के भाई निमंत्रण देकर अपने राजमहल ले गये। वहाँ तीन रात ठहरा। वहाँ भी एक धर्मसभा तथा चर्चा आदि हुई थी। उनकी एक बहन के साथ परिचय हुआ। इन्होंने मुझे निमंत्रण देते हुए कहा कि पूना जाने पर इन्हीं के मकान में ठहरूँ। मैंने कहा – "यह कैसे हो सकता है, आपका निमंत्रण विधिसम्मत नहीं है। हिन्दू परम्परा में पति के विद्यमान रहते, उनकी सहमति के बिना पत्नी किसी को निमंत्रण नहीं दे सकती। खैर, आप लोगों के मकान में अवश्य जाऊँगा, परन्तु पहले जाकर अपने पुराने मित्र सरदार मुदलियार के मकान में ठहरूँगा। उसके बाद सूचना दूँगा और तब आप लोग बुलायेंगे, तो आऊँगा। ...

इनके गृह-देवता श्रीकृष्ण हैं। अहा ! ऐसी सुन्दर मूर्ति अन्यत्र नहीं देखी। दस-बारह अंगुल ऊँचे, बंशीवाले ! मुख-मण्डल अपूर्व सुन्दर ! मूर्ति के शरीर का रंग शरद्काल के आकाश की तरह था। धातु-निर्मित था और वह रंग शायद धातु का ही था। पीले रेशम के वस्त्र और सिर की पगड़ी ऐसी खिल रही थी कि सबका मन हर लेनेवाली थी। बहन जब आती है, तो घण्टों श्रीकृष्ण को गीत सुनाती रहती है।

पूना की विचित्र घटना

मीरज से मुम्बई लौटते समय पूना में उतरने की बात पूर्व -निर्धारित थी, इसी कारण सरदार मुदलियार को पत्र आदि लिख रखा था। भोर में गाड़ी से उतरकर एक टैक्सी में बैठा ही था कि एक सज्जन आकर बोले कि वे बहुत दिनों बाद बर्मा से लौटे हैं और उनका घर सनवार-पेठ अर्थात् शनिवार के बाजार में है। मुझे भी वहीं जाना था, अत: मैं यदि स्थान दूँ, तो उनका सस्ते में काम हो जायेगा। उन्हें बैठा लिया।

सरदार मुदलियार प्रसिद्ध व्यक्ति थे। सभी उन्हें पहचानते थे। १९२६ ई. में बैंगलोर से लौटते समय एक बार उनके यहाँ ठहरा था। इसीलिये मेरा परिचय था। ड्राइवर ने कहा कि वह उन्हें जानता है और इस व्यक्ति को उतारने के बाद मुझे मेरे स्थान पर ले जायेगा, विलम्ब नहीं होगा। वह व्यक्ति अपना स्थान पहचान नहीं सका और इधर-उधर घूमने के कारण देरी होती देख, मैंने पहले मुझे ही उतार देने को कहा। एक विशाल पुरानी अट्टालिका के सामने वह गाड़ी रोककर बोला – यही सरदार मुदालियार का मकान है। मुझे मालूम था कि सरदार का मकान नया तथा बड़ा सुन्दर और उसके सामने बगीचा था। परन्तु यह तो ठीक रास्ते पर ही है – नीचे सिर्फ दुकान है, पुराना मकान ! सोच रहा था कि पिछले आठ वर्षों में ही ऐसा कैसे हो गया ! ड्राइवर से कहा – "पूछकर देखो, मकान यही है क्या?" – "बिल्कुल यही मकान है। वह देखिये सामने सिनेमा हाऊस भी है।"

इतने में ऊपर से कोई मेरा नाम लेकर बोला – "आप आ गये ! टैक्सीवाले ! जरा ठहरना, मैं आता हूँ।" जिन्होंने कहा था, वे एक सौम्यमूर्ति सुन्दर व्यक्ति थे, परन्तु मेरे लिये सर्वथा अपरिचित थे। वे नंगे पाँव उतरकर आये और बोले – "कहाँ है आपका सामान?" इतना कहकर उन्होंने स्वयं मेरी पोटली उठा ली और बोले – "आइये।" पूछा – "क्या यही सरदार मुदलियार का मकान है?" – "आइये न। वह सब बातें बाद में होंगी।" विस्मयपूर्वक मैं अन्दर घुसा। दालान पार करके छोटा-सा आँगन था। देखा – वही (मीरजवाली) बहन खड़ी खिल-खिलाकर हँस रही है। मैं सोचने लगा – यह क्या हुआ ! वह बोली – "क्यों, पकड़े गये न ! कहा था कि पहले हमारे मकान में नहीं आयेंगे।"

पकड़ा गया था, पूरी तौर से पकड़ा गया था। अस्वीकार करने का कोई उपाय न था। – "परन्तु यह हुआ कैसे?" – "चाय के समय बताऊँगी, अभी आप हाथ-मुँह धो लीजिये।"

स्नान करके ऊपर गया। गृहस्वामी बोले – "यह मकान आपकी बहन का है, आप जिस कमरे में भी चाहें, यथेच्छा जाकर संध्या-वन्दन कर सकते हैं। आपके आने के बाद चाय पान होगा।" इतना कहकर वे चले गये। मेरा सामान हॉल

में ही रखा था। उसके पास ही एक कमरा था, जिसका द्वार खुला देखकर अन्दर गया। देखा – छोटा-सा खाली कमरा, कोई नहीं, एक मेज पर ठाकुर का चित्र रखा है ! यह किसी विद्यार्थी के पढ़ने का कमरा था। वहीं बैठकर थोड़ा जप आदि करने के बाद बाहर आकर देखा – सभी मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाहर आते ही सबको दुबारा हँसते देखकर मैंने पूछा – "कोई और trick (खेल) होनेवाला है, या सब हो चुका?" उत्तर मिला – "हो चुका है।" उनके एक बैरिस्टर मित्र ने कहा – "आपके उस कमरे में जाते ही हो गया।"

इसके बाद हम चाय पीने बैठे और आरम्भ से पूरी कहानी सुनी। इसके बाद वकील साहब बोले – "ये (बहन) जिस दिन पिता के घर से लौटीं, तो इनके पति सरदार म्हेन्दड़े ने पूछा – 'मेरे लिए पीहर से क्या लाई हो?' इन्होंने उत्तर दिया – 'एक अपूर्व चीज ला रही थी, पर तुम्हारे आमंत्रण के बिना नहीं आ सकती थी, अत: नहीं ला सकी।' फिर इन्होंने आपके बारे में बताते हुए कहा कि आप सरदार मुदलियार के मकान में ठहरेंगे। तब इनके पति गम्भीर होकर थोड़ी देर चुप रहे, फिर सहसा कह उठे – 'वे निश्चय ही हमारे इस मकान में ही ठहरेंगे। निश्चय ही ! निश्चय ही !' यह बात उन्होंने इतनी दृढ़ता के साथ कही कि हम दोनों (वकील साहब तथा बहन) ने उस पर और कोई चर्चा नहीं की। वैसे दोनों के मन में संशय का उचित कारण भी था, क्योंकि आप पहले कभी यहाँ आये नहीं और पूर्णतया अपरिचित थे। फिर आज भोर से ही ये खिड़की के पास बैठे रास्ता देख रहे थे। आज आपके आने का दिन था, इसलिए हम दोनों ने इशारे से उनकी ओर संकेत करके हँस लिया था, क्योंकि यह पूर्णत: असम्भव बात थी। ये सुबह उठते ही चाय पीते हैं, पर आज कहा – बाद में पीयेंगे। फिर सहसा उस टैक्सी के रुकते ही वे आपका नाम लेकर पुकार उठे और आप भी आ पहुँचे। तब ये आपको यहाँ ले आये। आप जब स्नान करने गये, तो ये बोले – 'देखो, यदि ये रामकृष्ण के सच्चे अनुयायी होंगे, तो उसी कमरे में अर्चना करने जायेंगे, क्योंकि केवल उसी में उस विद्यार्थी का रखा हुआ श्रीरामकृष्ण का एक चित्र लगा हुआ है।' फिर इन्होंने हम सबको वहाँ से हटा दिया। उसके बाद जो हुआ वह सब आप जानते ही हैं।"

कितने आश्चर्य की बात है ! टैक्सीवाला सचमुच ही भूल से मुदलियार का मकान बताकर मुझे उन्हीं के मकान पर छोड़ गया और मैं उसी कमरे में गया। नि:सन्देह यह सब दैवी घटना है। जब ये बातें हो रही थी, तो उनकी आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे। उनकी पत्नी की आँखें भी डबडबा आयी थीं। यह देखकर मेरे नेत्र भी गीले हो उठे।

सरदार ने कहा – "मुझे मालूम था आप यहीं ठहरेंगे। मेरी स्त्री ने आपको निमंत्रण दिया था। मैं हृदय से रामकृष्ण की भक्ति करता हूँ और आप हमारे यहाँ नहीं आयेंगे !" यह बात कहते-कहते उनका मुँह तथा आँखें लाल हो गईं और आँसुओं की अविरल धारा से उनकी छाती भीग गई।

मैं अत्यन्त अभिभूत हो गया था। ठाकुर की अपार लीला देखकर केवल इतना ही कह सका – "सचमुच ही यह प्रमाणित हो गया।" उनके यहाँ तीन रात था – सारे दिन और रात के बारह-एक बजे तक केवल भगवत्-चर्चा और सन्त तुकाराम के भजनों की आवृत्ति करते हुए नेत्रों के जल से सराबोर हो जाना। इतने विषयों के बीच रहकर भी स्वयं बैरिस्टर में इतनी भक्ति थी ! 'चैतन्य-भागवत' में ऐसे गृही भक्तों की बातें हैं – हरिदास ने प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्हें गुरु के रूप में वरण किया था, क्योंकि पहले उनकी धारणा थी कि इतने ऐश्वर्य के बीच कोई उत्तम भक्त नहीं हो सकता है और कह भी दिया था कि उनकी भक्ति ढोंग है।

ये भी वैसे ही भक्त थे। पत्नी, मित्रों आदि किसी के भी साथ सांसारिक चर्चा नहीं करते थे। नाम मात्र के बैरिस्टर थे, प्रैक्टिस नहीं करते थे। सन्त तुकाराम के परम अनुरागी थे और दिन-रात उन्हीं के अभंगों की आवृत्ति करते रहते थे। उनकी सहधर्मिणी मीरज के राजा की बहन और परम भक्तिमती थीं। वे नित्य भोर में ही उठकर स्नान आदि करके तानपुरा लिये अपने गृह-देवता के कक्ष में जाती हैं और वहाँ नारायण के समक्ष बैठकर डेढ़-दो घण्टे भजन गाती हैं। भक्तिपूर्ण हृदय तथा सुमधुर कण्ठ से गाये हुए उनके भजन देव-मानव – सभी को मुग्ध कर लेते हैं। उनका घर वैकुण्ठ-तुल्य हो जाता है। मुझे भी दो दिन संध्या के बाद वे भजन और सरदार द्वारा अभंग की आवृत्ति सुनने को मिली थी। धर्मचर्चा निरन्तर चलती रहती थी। उन तीन दिनों के दौरान उन्होंने और कोई कार्य नहीं किया, केवल एक दिन आधे घण्टे के लिए एक सभा में गये थे।

सरदार मुदलियार को खबर भेजी। वे मिलने आये। उन्हें सब बताया कि कैसे उनके यहाँ न जाकर यहाँ आ पहुँचा हूँ। उनके मकान में न ठहरने कारण उन्हें जो असुविधा आदि हुई, उसके लिए क्षमा माँगी। धन्य हैं म्हेन्दड़े दम्पत्ति।

मीरज की घटना

हाँ, मीरज में एक घटना और हुई थी। उस समय बहन वहीं थीं। दोपहर को भोजन के समय वे और उनके छोटे भाई की स्त्री परोस रही थीं। उस दिन ब्राह्मण-रसोइयों को खाना पकाने से मना कर दिया गया था; उन दोनों ने ही और वह भी मेरे लिए खास तौर से सब पकाया था। वैसे वे नित्य ही एक सब्जी अपने हाथ से बनाती थीं। उस दिन परोसते समय उन्होंने पूछा – "कैसी बनी है?" मैं उन्हें हिन्दी में समझा रहा था, परन्तु एक बात वे मानो समझ नहीं पा रही थी, तो मैं थोड़ा सोचने लगा। यह देखकर उनके भाई बोले – "अंग्रेजी

में कहिये, ये मुम्बई की ग्रैजुएट हैं। मैं अवाक् रह गया! पिछली रात और सुबह कितनी चर्चा हुई! मैं हिन्दी में बोला था और वे मराठी में, उन्होंने अँग्रेजी के एक शब्द का भी उच्चारण नहीं किया था। कितनी सुन्दर बात है और कैसा विनय है! राजकुमारी थीं, सरदार की गृहिणी थीं, पर इसका जरा भी गर्व नहीं था। बाद में, पूना में भी वे अपनी मातृभाषा मराठी में ही बातें करतीं और मैं समझ लेता था। न समझने पर वे दूसरी भाषा में बोलतीं। पूना में जितने दिन भी रहा, वे स्नान का पानी नौकर से नहीं, स्वयं ही रख जातीं। स्वयं मेरे वस्त्र आदि धो देतीं। स्वयं मेरे लिए शौच आदि का पानी रख जातीं। स्नान आदि के बाद देने के लिए स्वयं मेरे वस्त्र लिए खड़ी रहतीं। इसीलिए मेरे वस्त्र सूख जाने पर भी वे उन्हें मेरे पास नहीं रख जातीं। स्नान करने का पानी देकर कहती – स्नान कीजिए मैं वस्त्र लाती हूँ। यह गृहिणी का अधिकार है – संन्यासी अतिथि की सेवा नौकर द्वारा नहीं हो सकती। घर की कन्या या स्वयं गृहिणी का ही यह अधिकार है। सन्तान आदि नहीं थे, अत: स्वयं ने हँसी-खुशी किया। यही सच्चा आर्य आदर्श है। महाराष्ट्र ने अब भी इसे जीवित रखा है। ऐसे ऊँचे कुलों में ही यह आदर्श रक्षित रहा है।

श्रीरामकृष्ण की जन्म-शताब्दी (१९३६) असम

पूज्य सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) का शीघ्र जाने के लिए बुलावा आने के कारण मुम्बई लौटते ही कोलकाता के लिए रवाना हुआ। मार्ग में दो दिन नागपुर में ठहरा। शताब्दी का आयोजन चल रहा था, लोग आ रहे थे। ...

बेलूड़ मठ में पहुँचकर देखा कि धूम मची हुई है, मन्दिर बन चुका है, विराट् आयोजन चल रहा है। पूजनीय सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) बहुत प्रसन्न हैं।

सहसा आदेश हुआ – असम में प्रचार के लिए अन्य कोई व्यक्ति नहीं मिल रहा है, इसलिए मुझे जाना होगा। यह आदेश शताब्दी-कार्यालय के संचालक के प्रतिनिधि के मार्फत आया। पहले तो मना कर देने की इच्छा हुई, लेकिन उन प्रतिनिधि ने इतना जोर दिया कि आखिरकार 'हाँ' करने को बाध्य हुआ। जहाँ दूसरे जाने से डर रहे थे, उस वन्य पर्वतीय अंचल की ओर चल पड़ा। पहले सिलचर गया, पर वहाँ के भाव से समझ गया कि वे इस अनजान अज्ञात वक्ता के साथ प्रयोग करने को तैयार नहीं हैं और यह उचित भी था, क्योंकि इसके पूर्व मैंने कभी मंच पर खड़े होकर असंख्य श्रोताओं के समक्ष बँगला में व्याख्यान नहीं दिया था।

मेरे वहाँ पहुँचने में एक दिन विलम्ब भी हो चुका था। यद्यपि कार्यक्रम चालू था, कीर्तन आदि हो रहे थे, पर मुझे बुद्धिमतापूर्वक हाइलाकान्दी भेज दिया गया। इसके साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि बेलूड़ मठ से जो भी वक्ता सिलचर आयेंगे, वे हाइलाकान्दी जायेंगे। मैं गया और जीवन में वहीं पहली बार बँगला में व्याख्यान दिया – श्रीठाकुर का स्मरण करके उनकी बातें कहीं। रिपोर्ट बहुत अच्छी हुई। सिलचर के प्रतिनिधि साथ ही थे, उन्होंने रिपोर्ट दी।

वहाँ से सिलहट गया। सिलचर रह गया – काफी दिनों बाद वहाँ जाने पर बहुत आग्रह करने पर चार भाषण दिये थे। सिलहट में तीन भाषण अच्छे हुए थे। इस प्रकार असम का पहला दौरा आरम्भ हुआ। सिलहट से देवेश महाराज साथ थे। उन्होंने ही सर्वत्र सभा की व्यवस्था की थी और रिपोर्ट दी – "श्री ठाकुर के नाम पर लोगों में कितना उत्साह है! छोटे-बड़े स्त्री-पुरुष सब मतवाले हो उठे थे।" मैं बँगला में बोलता था, तो भी छोटे-छोटे आसामी लड़के-लड़कियाँ, भाषा न समझने के बावजूद दो-ढाई घण्टे चुपचाप बैठकर सुनते। ऐसा विशेषकर गोलाघाट में हुआ था। स्कूल के मुख्य शिक्षक से पूछने को कहा कि उन लोगों ने क्या समझा? उत्तर आया – "विशेष कुछ भी नहीं समझा।" – "तो इतनी देर किस तरह बैठे थे? कष्ट नहीं हुआ?" उत्तर आया – "बड़ा अच्छा लग रहा था और कष्ट जरा भी नहीं हुआ।" गोलाघाट में स्वामी चण्डिकानन्द साथ थे और वहाँ से लौट गये। यहाँ भी बंगाली लोग भयभीत थे, परन्तु आसामी लोग ही सर्वाधिक उत्साह के साथ आये थे और सभा में अधिक संख्या में भाग लिया था। सात-आठ सौ लोगों की भीड़ होती और हॉल में जगह नहीं रह जाती।

जोरहाट के बंगालियों ने साफ कह दिया कि वहाँ आने से आसामी मेरा अपमान कर सकते हैं। केवल एक आसामी भाई और (टोकलाई एक्सपेरिमेंटल फार्म के) एक बंगाली चीफ कैमिस्ट के उत्साह तथा आग्रह से वहाँ गया था। वहाँ बंगालियों के स्थानीय नेता ने मुझे अपने एक नये मकान में ठहराया, पर सभा आदि में भाग लेने से साफ मना कर दिया, क्योंकि एक तो नित्य ही बंगाली-विद्वेष के कारण झगड़ा चल रहा था और उस पर नया कोई झंझट खड़ा करना उनके विचार से बड़ा अन्यायपूर्ण होगा।

यह विद्वेष लार्ड कर्जन का अवदान था और जोरहाट ही इसका केन्द्र था। 'बातरी' अखबार के सम्पादक तथा मालिक ने यह विद्वेष चला रखा था। अस्तु, श्रीठाकुर का नाम लेकर हम टाउन-हॉल पहुँचे। आयोजक बोले – "वातावरण ठीक नहीं है। लोग सम्भवत: ३०-४० से ज्यादा नहीं होंगे।" हे भगवान, वहाँ जाकर देखा – टाउन-हॉल बहुत पहले ही भर चुका था! सभी आसामी थे, केवल तीन आयोजक मात्र बंगाली थे। सभा के अध्यक्ष बैरिस्टर बरुआ थे। उस दिन मैंने धर्म-विद्वेष और जाति-वर्ण विद्वेष पर ही खूब चोट की। बंगाली भयभीत थे, परन्तु सबने चुपचाप सुना।

दूसरे दिन फिर वहीं टाउन-हॉल में सभा हुई। उस दिन अध्यक्ष थे जमींदार और कौंसिलर बेजबरुआ। हॉल भर जाने

के कारण लोग हॉल के चारों ओर दूर-दूर तक एकत्र थे – कुछ बंगाली बड़े लज्जित भाव से आये थे। पर आयोजकों को विपत्ति की आशंका थी। मुख्य आयोजक बेजबरुआ बोले – 'वार्ता'-सम्पादक आये हैं। 'वार्ता' का इतना भय है कि उन्हें सम्भवत: इस सभा की सूचना या निमंत्रण भी नहीं भेजा गया था। विषय था – 'समन्वय-धर्म'। मुख्य भाषण के बाद सभापति ने अपने सम्बोधन में कहा – "इनका व्याख्यान अद्‌भुत हुआ है, पर इन्होंने हमारे शंकरदेव का उल्लेख नहीं किया है।" इतना कहकर शंकरदेव की महिमा का वर्णन करते हुए बोले – जो प्रभाव हुआ था, उसे करीब पूरा-का-पूरा नष्ट हुआ देखकर बहुत ही दुख हुआ। इस पर मैं सभापति की अनुमति लेकर पुन: दो-चार बातें कहने के लिए उठा। शंकरदेव की मौलिकता आदि के विषय में थोड़ा-बहुत बोलने के बाद कहा – आसामी भाषा में उनकी केवल दो जीवनियाँ हैं और उनमें भी परस्पर सहमति नहीं है। अन्य किसी भाषा में उन पर कोई अच्छी किताब हो, मुझे यह भी नहीं मालूम। महापुरुषों के बारे में अल्पज्ञान लेकर बोला नहीं जा सकता, उचित भी नहीं है, इसलिए मैंने उनका उल्लेख नहीं किया। (लोगों ने तालियाँ बजाकर मेरा समर्थन किया।) भाग्यवश वे दोनों पुस्तकें मैंने गोलाघाट में पढ़ ली थीं। प्रभु ने बचाया। सभापति फिर उठकर कहने लगे – "क्यों, अंग्रेजी में शंकरदेव का चरित्र बड़ौदा से प्रकशित तो हुआ है!" बाध्य होकर मुझे पुन: बोलना पड़ा और थोड़ा रस लेकर ही कहा – "वह एक छोटी-सी पुस्तक है। मेरा पेट बड़ा है, बालक के भोजन से तृप्ति नहीं हो सकती है। इसलिए आप लोगों से कहता हूँ कि एक अच्छी जीवनी लिखिये।" सबने हँस-हँसकर तालियाँ बजाते हुए मेरा समर्थन किया। बच गये। (उस पुस्तक की समीक्षा पहले से ही 'माडर्न रिविउ' पत्रिका में पढ़ रखी थी) वह याद आ जाने से रक्षा हुई। प्रभु की ही सारी व्यवस्था थी।

सहसा एक अजीब बात हुई। Vote of thanks (धन्यवाद -प्रस्ताव) देना आयोजकों का काम है, परन्तु सभापति ने उनसे बिना कुछ पूछे ही आकर सम्मुख बैठे हुए 'वार्ता' के सम्पादक को धन्यवाद देने के लिए कहा। आयोजकों की छाती धड़कने लगी, देखा – उनका मुँह सूखकर छोटा होता जा रहा है, कोई उपाय न था।

परन्तु प्रभु की कृपा से उन्होंने विष की जगह अमृत का वमन किया। ठाकुर की महिमा का बखान करते हुए वे बोले कि उन्होंने 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' पढ़ा है और सभी आसामी भाइयों को सम्बोधित करते हुए कहा कि वे लोग भी उसे खूब मनोयोग के साथ पढ़ें। पर साथ ही उन्होंने एक आक्षेप भी किया – "वचनामृत का अब तक आसामी भाषा में अनुवाद क्यों नहीं हुआ है? इसके लिए मिशन उत्तरदायी है।" (आक्षेप सुनकर मैंने थोड़ा घबड़ाकर धीरे से अपने मित्र बेजबरुआ से पूछा कि ये सज्जन बंगाली जानते हैं या नहीं? उन्होंने बताया – "ये कोलकाता में पढ़े हुए ग्रेजुएट हैं और बँगला भाषा के अच्छे ज्ञाता हैं।) अन्त में उन्होंने कहा कि रामकृष्ण संघ के साथ उनका कोई झगड़ा या कोई विरोध नहीं है। वह संस्था जितनी बंगालियों की सम्पदा है, उतनी ही आसामियों की भी है।" मैंने पुन: दो मिनट समय माँगा और बोला – "इन्होंने रामकृष्ण मिशन पर जो आरोप लगाया है, उसके उत्तर में मैं पूछता हूँ कि वह कार्य – 'वचनामृत' का अनुवाद – इन्होंने स्वयं क्यों नहीं किया? ये बँगला भाषा के विद्वान् हैं, इनके लिए यह बहुत आसान होगा और हम लोगों को आसामी भाषा सीखकर अनुवाद करने में समय तो लगेगा ही, वह बहुत अच्छा भी नहीं भी हो सकेगा।"

सभी खूब हँसने और तालियाँ बजाने लगे। 'वार्ता' के सम्पादक भी हँसने लगे। आपस में प्रीतिपूर्ण वार्तालाप होने के बाद हम सभी विदा हुए। श्रीरामकृष्ण की जय हो!

डिब्रूगढ़, शिवसागर आदि सर्वत्र प्रभु की जय-जयकार हुई। शिवसागर में एक हिन्दी प्रचारक वहाँ के राष्ट्रीय गाँधी विद्यालय में हिन्दी पढ़ाते थे। वे दो दिन मेरा भाषण सुनने आये थे। सर्वत्र मैं बँगला में ही बोला था और आसामियों ने अपनी भाषा में बोला था – दोनों को आपस में समझा जा सकता है, कोई विरोध नहीं। वे अपने स्कूल की ओर से निमंत्रण देने आये और कहा – "वहाँ बँगला नहीं चलेगा। अँग्रेजी, हिन्दी या आसामी में बोल सकते हैं, तो बोलियेगा – बँगला लड़के नहीं समझेंगे और शायद सुन भी न सकें।" मैं चुप रहा और स्कूल-परिदर्शन के बाद लड़कों की सभा में पूछा कि वे बँगला में सुनना चाहेंगे या अँग्रेजी में। सभी कह उठे – बँगला में, बँगला में। हिन्दी शिक्षक चुप! मुँह सूख गया। उसकी ओर देखते हुए बँगला में दो-चार बातें कहने के बाद मैं बोला – "सुना है आप लोगों ने खूब हिन्दी सीखी है, इन्होंने ऐसा ही कहा है और मुझसे हिन्दी में भाषण देने को कहा है, अत: इनकी बात भी रहनी चाहिए" कहकर दो-चार बातें मैंने हिन्दी में कहीं और पूछा – "क्या समझे? बताइये?" सब मुँह की तरफ देखते रहे केवल एक शिक्षक थोड़ा समझे थे। हेड-मास्टर ने कहा – अभी सीखना शुरू ही किया है, इतना ज्ञान नहीं है। वहाँ से आते समय हिन्दी-प्रचारक महोदय को एक ओर ले जाकर मैंने कहा – "हिन्दी सिखाने आये हैं, वही लेकर रहिये। बंगाली-विद्वेष के प्रचार में उत्साह दिखाने की जरूरत नहीं। यदि ऐसा करें और मेरे कानों में आया, तो आप लोगों के स्वामी को कहकर आपको देश भिजवाने की व्यवस्था करूँगा।" मुँह लाल हो गया और कहने लगे – "क्षमा कीजिये, मेरा मतलब यह नहीं था।"

❖ (क्रमश:) ❖

नारदीय भक्ति-सूत्र (२२)

स्वामी भूतेशानन्द

(रामकृष्ण संघ के बारहवें अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी ने अपने १० वर्षों के जापान-यात्राओं के दौरान वहाँ के करीब ७५ जापानी भक्तों के लिये अंग्रेजी भाषा में, प्रतिवर्ष एक सप्ताह 'नारद-भक्ति-सूत्र' पर कक्षाएँ ली थीं। उन्हें टेप से लिपिबद्ध और सम्पादित करके अद्वैत आश्रम द्वारा एक सुन्दर ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया गया है। वाराणसी के श्री रामकुमार गौड़ ने इसका हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

लोकहानौ चिन्ता न कार्या
निवेदितात्मलोक-वेदत्वात् ।।६१।।

अन्वयार्थ – **लोकहानौ** – लोक-प्रशंसा की हानि, **चिन्ता** – चिन्ता, **न कार्या** – उचित नहीं, **निवेदित** – समर्पित, **आत्म** – अपना, **लोक** – लोक-सम्मान, **वेद** – शास्त्र-निर्देश।

अर्थ – व्यक्ति को लोक-प्रशंसा की हानि की चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भक्त स्वयं को, लोक-प्रतिष्ठा को और श्रुति-आदेशों के प्रति निष्ठा को ईश्वरार्पित कर चुका है।

भक्त को अपनी कामना या सुख के विषयों की हानि के बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सुखप्रद विषयों की हानि हो सकती है, पर भक्त के मन में इस कारण रंचमात्र भी भय करने की जरूरत नहीं। ऐसा इसलिये है कि भक्त ने सभी कर्मकाण्डों का त्याग कर दिया है और इसीलिये उसे आशंका हो सकती है कि कहीं वह उच्चतर सुख से वंचित न रह जाय। भक्त को ऐसे भय की जरूरत नहीं है। उसने स्वयं को अपनी आत्मा को समर्पित कर दिया है; उसने संसार के सभी सुख, लोगों की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण समझे जानेवाले सुख ईश्वर को समर्पित कर दिये हैं। उदाहरणार्थ वैदिक कर्म-काण्ड का अनुष्ठान करनेवाले व्यक्ति को स्वर्ग या किसी अन्य लोक का सुख मिलेगा, पर भक्त के लिये यह आवश्यक नहीं है, क्योंकि वह पूर्णत: ईश्वर को समर्पित हो चुका है।

एक और महत्त्वपूर्ण बात है – भक्त को लोक-प्रतिष्ठा या अपनी प्रशंसा के बारे में चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि इससे उसका कोई सरोकार नहीं होता। उसे यह नहीं सोचना चाहिये कि लोग उसके बारे में क्या कहेंगे या इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये कि कौन से यज्ञ आदि वह सम्पन्न नहीं कर सका। उसे लोकमत या वैदिक विधानों के भय से पूर्णत: मुक्त रहना चाहिये, क्योंकि उसने सब कुछ ईश्वर को समर्पित कर दिया है।

न तत्सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागः
तत्साधनं च (कार्यमेव) ।।६२।।

अन्वयार्थ – **तत्-सिद्धौ** – उसकी सफलता के लिये, **लोक व्यवहारः** – लोक-व्यवहार, **न हेयः** – त्याज्य नहीं है, **किन्तु** – परन्तु, **फलत्यागः** – फलों का त्याग, **च** – तथा, **तत्साधनम्** – उसके साधन – **(कार्यम् एव** – अपनाने चाहिये।)

अर्थ – भक्ति-मार्ग में सफलता के लिये व्यक्ति को (उत्तम) लोक-व्यवहार नहीं छोड़ना चाहिये, परन्तु कर्मों के फलत्याग के साथ-ही-साथ उनकी प्राप्ति के साधनों को अवश्य ठीक रखना चाहिये।

पिछले सूत्र में कहा गया कि भक्त वैदिक विधानों या लोकमत की परवाह नहीं करेगा। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या वह असंयमित आचरण करेगा और मनमौजी ढंग से विचरण करेगा? वह इस संसार में कैसा आचरण करेगा?

इसीलिये इस सूत्र में एक और बात कही गई कि भक्तिलाभ के लिये संसार में उचित आचरण छोड़ने की जरूरत नहीं। परन्तु यह भी कहा गया है कि भक्त के सारे कर्म ईश्वरार्पित होने चाहिये।

प्रथमत:, जिस वस्तु को समर्पित किया जाना है वह है कर्मफल। भक्त को अन्य लोगों के समान ही रहना होगा, वह चुपचाप बैठ नहीं सकता। उसे अपने लक्ष्य पर सतत दृष्टि रखकर संसार में व्यवहार करना होगा। उसका आचरण सर्वदा उस महान् आदर्श के अनुरूप होना चाहिये, जिसे या तो उसने प्राप्त कर लिया है अथवा प्राप्त करना चाहता है।

तात्पर्य यह है कि वह जो कुछ भी करता है, केवल कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये नहीं करता। यदि वह कुछ करता है, तो इसे कुछ पाने या कुछ हासिल करने की कामना से नहीं करता। उसे कर्म तो करने चाहिये, किन्तु उनके फलों की कोई इच्छा नहीं रखनी चाहिये। यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। भक्त होने का मतलब कोई जड़ पदार्थ या काठ-पत्थर होना नहीं है। उसे कर्मों का नहीं, बल्कि कर्म के फल का त्याग करना चाहिये। उसे कर्म करते जाना चाहिये, परन्तु फलों की आसक्ति के बिना करना चाहिये।

गीता[१] में कहा गया है कि इस संसार में कोई भी व्यक्ति कर्मों का त्याग करके एक क्षण भी नहीं रह सकता। ऐसा सम्भव ही नहीं है। यहाँ तक कि साँस लेना भी एक कार्य है और आप साँस को रोक नहीं सकते। उसके बिना जीवन ही नहीं चलेगा। इसी प्रकार, सभी कर्मों का त्याग करने की जरूरत नहीं है, बल्कि हमें ऐसे कर्मों के फलों की कोई कामना नहीं करनी चाहिये और न ही उनके परिणामों से प्रेरित होकर क्रिया-कलापों में लिप्त होना चाहिये। यहाँ तक कि शास्त्रों के निर्देशानुसार फलों की इच्छा से प्रेरित होकर किये जानेवाले यज्ञों को भी उनके विहित परिणामों की इच्छा के बिना ही सम्पन्न किया जा सकता है। गीता में कहा गया है – "जैसे कोई अज्ञानी व्यक्ति फल की आसक्ति से कर्म करता है, वैसे ही भगवद्भक्त उन्हीं कर्मों को अनासक्त भाव से करेगा।"[२] वह उन कर्मों को क्यों करता है? जगत् का हित करने की इच्छा से। क्या यह इच्छा है? हाँ। परन्तु यह स्वार्थपूर्ण इच्छा नहीं है। वह उसके द्वारा अपने लिये कुछ नहीं चाहता। तात्पर्य यह कि वह पूर्ववत् ही सारे कर्मों को करता जाता है, पर कोई भी कर्म अपने लिये कुछ पाने की इच्छा से नहीं करता। कर्म का परिणाम तो होगा ही। तो क्या ऐसे भक्त के कर्म क्या निष्फल होंगे? क्या उनका कोई फल नहीं होगा? क्या वे निष्फल प्रयत्न होंगे? शास्त्र कहते हैं कि उसके कर्म निष्फल नहीं होंगे, किन्तु उनके फल उसको नहीं मिलेंगे। उसके फल दूसरों के प्राप्त होंगे।

जो लोग उस व्यक्ति पर श्रद्धा रखेंगे, वे उसके सत्कर्मों के फल प्राप्त करेंगे; और जो उससे घृणा या द्वेष करेंगे, जो उसका विरोध करेंगे, वे उसके बुरे कर्मों के फल भोगेंगे। पर उसके द्वारा कोई बुरा कर्म कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि अनजाने में ही उससे किसी को हानि पहुँच सकती है। उसके चलने-फिरने या भोजन करने से अन्य जीवों को पीड़ा पहुँच रही होगी। तो ऐसे कर्मों के फलों को कौन प्राप्त करेगा? जो लोग उससे द्वेष करेंगे, वे उसके कर्मों के बुरे फलों को प्राप्त करेंगे। शास्त्रों में यही निष्कर्ष दिया गया है।

इसलिये भक्त कर्मों का पूर्ण रूप से त्याग नहीं करेगा, परन्तु वह जो कुछ भी करेगा, अपने लिये उन कर्मों के फलों की कोई इच्छा नहीं रखेगा। यहाँ यही तात्पर्य है।

इसलिये सभी कर्मों को नहीं त्यागना है, बल्कि स्वार्थ-पूर्ण भाव के साथ किये जाने वाले कर्मों से दूर रहना है। इतना ही नहीं परम भक्ति की प्राप्ति में सहायक कर्मों को अवश्य करना चाहिये, क्योंकि वे उसे लक्ष्य की ओर अग्रसर कराते हैं। यदि लक्ष्य-प्राप्ति हो चुकी है, तो ऐसे कर्म दूसरों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करेंगे, ताकि उसका अनुसरण करके अन्य लोग भी उसी लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

जब भक्ति की प्राप्ति में सहायक कर्म पराभक्ति की प्राप्ति के बाद भी आचरित होते हैं, तो भक्त किसी उद्देश्य या प्रयोजन से उनका सम्पादन नहीं करते, बल्कि इसलिये करते है कि यह उनकी आदत – उनका स्वभाव बन चुकी है। वे सदा उन कर्मों को कर रहे थे, इसलिये वे उसके अभ्यस्त हो चुके हैं। अत: वे उन्हीं कर्मों को परम भक्ति प्राप्त करने के विचार के बिना भी करते हैं, क्योंकि वे उसे पहले से ही प्राप्त कर चुके हैं, पर क्रियाएँ केवल अभ्यासवश हो रही हैं।

❖ (क्रमशः) ❖

पुरखों की थाती

त्यजति शूर्पवद्-दोषान् गुणान् गृह्णाति साधवः।
दोषग्राही गुणत्यागी चालिनीव हि दुर्जनः॥

– सज्जन लोग सूप के समान दोषों को त्यागकर गुणों को ग्रहण कर लेते हैं और दुर्जन लोग चलनी के समान गुणों को छोड़कर दोषों को ही पकड़ लेते हैं।

त्यज दुर्जन-संसर्गं भज साधु-समागमम्।
कुरु पुण्यम्-अहोरात्रं स्मर नित्यम्-अनित्यताम्॥

– दुर्जनों का संग त्याग दो, सज्जनों की संगति का सेवन करो, दिन-रात पुण्य-सत्कर्म करते रहो और निरन्तर जगत् की अनित्यता को स्मरण रखो।

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेन हि जीवति॥

– जीवित रहना मात्र ही जीवन का उद्देश्य नहीं है, क्योंकि जीवित तो वृक्ष तथा पशु-पक्षी भी रहते हैं; केवल उसी का जीवित रहना सार्थक है, जो विचार-पूर्वक जीवित रहता है।

तपसा प्राप्यते स्वर्गः तपसा प्राप्यते यशः।
आयुः प्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो॥

– तपस्या के द्वारा स्वर्ग मिलता है, तपस्या के द्वारा यश की प्राप्ति होती है; आयु-समृद्धि तथा भोग भी तपस्या के द्वारा ही मिलते हैं।

१. गीता, ३/५ २. वही, ३/२५

ईशावास्योपनिषद् (२०)

स्वामी सत्यरूपानन्द

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने वर्षों पूर्व रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग-भवन में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने ने किया तथा वक्ता की पूर्ण सहमति से इसका सम्पादन एवं संयोजन स्वामी प्रपत्यानन्द ने किया है।)

अब ज्ञान और कर्म का क्या रहस्य है, इसे ऋषि अगले ग्यारहवें मन्त्र में बताते हैं –

'विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।। ११ ।।

– जो विद्या और अविद्या दोनों को जानता है, वह अविद्या द्वारा मृत्यु को जीतता है तथा विद्या के द्वारा अमृतत्व का अनुभव करता है।

ऋषि कहते हैं – विद्या और अविद्या को जब तुम जान सकोगे, तो उसका लाभ क्या होगा? एक को जान लेने से तुम मृत्यु के पार हो जाओगे और दूसरे के द्वारा अमृतत्व में प्रतिष्ठित हो जाओगे। जो अविद्या में रत हैं, अर्थात् संसार के भोग में लगे हैं, वे लोग जड़-तत्त्व को प्राप्त होंगे। प्रत्येक मनुष्य की यह विशेषता है कि चाहे इस जन्म में या किसी दूसरे जन्म में ऐसा अवसर उसे अवश्य आयेगा कि वह भोगों से विरक्त हो जायेगा, उब जायेगा। यदि आप-हम इसी जीवन का अनुभव करके देखेंगे, तो पायेंगे कि आज से बीस-तीस साल पूर्व जिन भोगों के प्रति हमारे मन में तीव्र आकर्षण था, जिन भोगों को हमने भोगा, उनसे आज हमें वितृष्णा हो रही है। इस उम्र में अपने अनुभव से जिनको वितृष्णा हो गयी कि ठीक है बहुत उपभोग किया, अब और नहीं चाहिये। तो ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि मनुष्य चैतन्यस्वरूप है, इसलिये वह कभी-भी जड़-तत्त्व से तृप्त नहीं होगा। जो लोग रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श इन विषयों में डूबे हुये हैं, तथापि उन्हें यह बोध नहीं होता है कि वे इसमें डूबे हैं, जबकि वे डुबे हुये होते हैं, ऐसे लोगों के उद्धार की आशा कम रहती है। इन विषयों से जो अनुभव हमें हुआ है, उसे हम भूल जाते हैं। वह केवल बुद्धि के स्तर पर ही है, हृदय के स्तर पर नहीं है। इसलिये हम उसमें एकदम डूबे रहते हैं। ऋषि हमसे कहते हैं कि इन दोनों को जानो। इसे कैसे जानें?

जब हमें सत्-असत्-विवेक के द्वारा वैराग्य होगा, तब हम इसे जान सकेंगे। जब विद्या और अविद्या के द्वारा हमें ज्ञात हो जायेगा कि अविद्या माने संसार का भोग, ईश्वर की कोई चिन्ता नहीं। अगर यह हमको समझ में आ जायेगा कि यह अविद्या हमें जड़-तत्त्व की ओर ले जायेगी और विद्या हमें अमृतत्व की प्राप्ति करायेगी। यदि हमें सद्-असद्-विवेक के द्वारा जगत के मिथ्यात्व का बोध हो गया कि इस परिवर्तनशील जगत से मिलने वाला सुख कभी स्थायी नहीं होगा। इससे मिलने वाली तृप्ति और अधिक अतृप्ति को जन्म देगी। तब हमें उन विषयों से वैराग्य होगा। ऐसे विवेकी व्यक्ति अपने जीवन में एक नया परिवर्तन लायेंगे। उनकी मन:स्थिति बदल जायेगी। वैसे इस देह की मृत्यु उपनिषद में दुखद नहीं है। सिर्फ देह की मृत्यु हो जाने से यदि मनुष्य मुक्त हो जाता, तो बहुत अच्छा था। किन्तु उपनिषदें कहती हैं कि यदि देह की मृत्यु हुई और तुम प्रमाद के साथ मरे तो तुम और भी जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहोगे। क्योंकि उस प्रमाद के कारण तुम्हें मनुष्य देह ही मिलेगा, ऐसा आवश्यक नहीं है। तुम्हें पशु-देह भी मिल सकता है। तो 'अन्धं तम:' में प्रविष्ट हो जाओगे। क्योंकि प्रमादै: वै मृत्यु: ब्रवीते। महाभारत में कहा गया है – जो हमारा कर्त्तव्य है, उसे जीवन में आचरित न करने का नाम प्रमाद है। जैसे किसी उत्सव में शिवजी के नाम पर हमने भाँग पी लिया, इसका नाम प्रमाद है। विवेक के द्वारा जीवन के परम कल्याण का ज्ञान होने के पश्चात् भी स्वयं के जीवन में आचरण न करने का नाम प्रमाद है। ऐसा प्रमाद, आलस्य जीवन में न आये, इसलिये विद्या का उपयोग करो।

यदि अविद्या का परिचय प्राप्त कर उसके दोषों को जानना है, तो विद्या के द्वारा उनका त्याग करना है। इस प्रकार दोषों को त्यागकर, सकाम कर्मों को छोड़कर, हम मृत्यु को पार कर जायेंगे। अर्थात् जब हम निष्काम कर्म करने लगेंगे तो चित्तशुद्धि होगी और उसके कारण हम अमृतत्व प्राप्त कर सकेंगे। इस ज्ञान के द्वारा हम जीवन में कर्तव्य कर्मों का निष्काम भाव से निष्ठापूर्वक पालन करेंगे, स्वधर्म का पालन करेंगे तो हमारे जीवन का प्रमाद और आलस्य चला जायेगा। और हमारी चेतना जाग जायेगी।

फिर स्वधर्मे निधनं श्रेय: – स्वधर्म पालन करते हुये मरने से श्रेयस् की प्राप्ति होगी। इस अर्थ में भी विद्या और अविद्या को जानने के बाद सत्-असत् का विवेक करना चाहिये तथा जीवन के परम श्रेय की ओर बढ़ना चाहिये। यह परम श्रेय क्या है?

इस उपनिषद के शान्ति-मन्त्र और प्रथम मन्त्र में इस परम श्रेय का स्पष्ट उल्लेख है। उसके बाद के सभी मन्त्र तो

केवल उसकी व्याख्या मात्र हैं। प्रथम मन्त्र – ईशावास्यं इदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्यस्विद्धनम् – को हमें बार-बार स्मरण करना होगा इसके स्मरण मात्र से ही हम दूसरे मन्त्रों को समझ सकेंगे। हमें विचार करना होगा कि क्या हमारे मन से किसी दूसरे के धन का लोभ गया? क्या हम सर्वत्र ईश्वर का बोध कर रहे हैं? क्या हम त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करने का अभ्यास कर रहे हैं? इन सबके अभ्यास से हमारा चित्तशुद्ध होगा और चित्तशुद्ध होने से हमें आत्मस्मृति होगी। हमें यह बोध होगा कि हम नित्य-मुक्त-शुद्ध-बुद्ध आत्मा हैं।

विद्या और अविद्या में रत रहने के कारण, उस चक्कर में पड़े रहने के कारण हमें आत्मस्मृति नहीं होती है। या तो विद्या के अभ्यास के द्वारा हम अंहकारी हो जाते हैं या अविद्या में डूबे रहने के कारण भोगों में फँस जाते हैं। भोग और अंहकार हमारी आत्मस्मृति को भूला देते हैं। हमें आत्मविस्मृति हो जाती है। हमने छठवें और सातवें मन्त्र में वही बात देखी थी कि कैसे मनुष्य शोक और मोह से दूर हो जाता है, कैसे घृणा रहित हो जाता है। मन्त्रों की व्याख्या के द्वारा यही सिद्ध होता है कि हमें विद्या और अविद्या को भी जानना चाहिये। संसार में जो नित्य और अनित्य है उसको भी जानना चाहिये। नित्य की उपासना से ही शाश्वत शान्ति मिल सकती है। अनित्य की उपासना से शाश्वत शान्ति और सुख कभी नहीं मिल सकता है। इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान अनित्य है। इन्द्रियों से नित्य का ज्ञान नहीं हो सकता। इन्द्रियाँ हमें वासना और कर्म में फँसाकर अशान्ति के गर्त में डाल देंगी। इसलिये उपनिषद में बताये गये उपायों से हमें इन्द्रियातीत नित्य ज्ञान को प्राप्त करना होगा। तब यह बोध होगा कि सब कुछ परमात्मा है। उससे भिन्न और कुछ भी नहीं है।

विश्व-ब्रह्माण्ड के कण-कण में और व्यक्ति के रग-रग में वह परमात्मा व्याप्त है। हमें उस सर्व-व्यापी परमात्मा का केवल स्मरण करना है। ये सारी तपस्या उसके स्मरण के लिये है। उसका स्मरण होते ही संसार का विस्मरण आपने आप हो जायेगा। हमें उसके लिये कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। इसलिये साधक को संसार के विस्मरण का प्रयत्न न करके ईश्वर के स्मरण का प्रयत्न करना चाहिये। उपनिषद् की भाषा में आत्मा के स्मरण का प्रयत्न करना चाहिये। श्रीरामकृष्ण देव कहते थे कि यदि तुम्हें पश्चिम की ओर नहीं जाना है, तो दिन-रात क्यों रटते हो कि पश्चिम दिशा खराब है, हमें उधर नहीं जाना है। अरे, पूर्व की ओर चलना शुरु करो, तो पश्चिम आपने आप पीछे हो जायेगा। इसलिये नित्य परमात्मा का स्मरण करो, अपने नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वरूप आत्मा का चिन्तन करो। यही इन मन्त्रों का प्रयोजन है।

ऋषि कहते हैं कि हमने विद्या और अविद्या का भेद और उसके अलग-अलग होने वाले फलों को भी बताया कि कैसे साधक विद्या और अविद्या दोनों को एक साथ जानकर अविद्या से मृत्यु को पार करता है और विद्या से अमृतत्व पा लेता है। यद्यपि यह थोड़ा विचित्र-सा लगता है कि अविद्या से कैसे मृत्यु के पार हो सकते हैं। इस विषय में आचार्यों ने बहुत मार्ग-दर्शन किया है।

हमें यह भी ध्यान रखना चाहिये कि शब्दार्थों से हमारा काम नहीं चलता है। वहाँ संकेत से दूसरी बातें कही गयी हैं, उसे सन्दर्भ से समझ लेना पड़ेगा। हम लोग भी भाषा में बहुत बार इन शब्दों का प्रयोग करते हैं और व्यवहार करते समय शब्दार्थ नहीं देखते। जो व्यक्ति निकम्मा है, अकर्मण्य है, कोई काम नहीं करता, मान लो उसका नाम सुरेश है। किसी ने कहा कि सुरेश को बुलाओ। तो दूसरा व्यक्ति कहता है अरे, सुरेश तो मुर्दा है, उससे यह काम नहीं होगा। जब हम ऐसा कहते हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वह शारीरिक दृष्टि से मृत है। इसका तात्पर्य है कि वह अकर्मण्य व्यक्ति है, आलसी है। उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह इस कार्य को कर सके जिस कार्य के लिये आप उसे बुला रहे हैं। ऐसे कार्य के लिये जिस कर्मठ व्यक्ति की आवश्यकता है, वह वैसा काम नहीं कर सकता।

इसी प्रकार उपनिषद जब हमें मृत्यु की बात, अविद्या की बात कहते हैं, तो उसका शाब्दिक अर्थ नहीं लेना चाहिये। आचार्यों ने उसका संकेत मात्र किया है। संकेत है कि अविद्या यानि अकर्मण्यता या जो हमें चैतन्य से विरत कर दे। ऐसे भोगवादी कर्म के लिये आये अविद्या का अर्थ आचार्य शंकर ने सकाम कर्म किया। कैसे? जैसे अग्निहोत्र आदि कर्म से अधिक-से-अधिक पितृलोक की प्राप्ति हो सकती है। वेदों के दो भाग हैं – ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड। इसमें से कर्मकाण्ड भाग मुक्ति नहीं चाहता। कर्मकाण्ड की अन्तिम बात है स्वर्ग-प्राप्ति। शुभकर्म करने से स्वर्ग प्राप्त होगा। स्वर्ग क्या है? जो सुख हमें यहाँ मिल रहा है, वह सुख कई गुना अधिक मात्रा में हमें मिलने लगे तो वह स्वर्ग है। स्वर्ग की कल्पना करते हैं कि वहाँ सुख-ही-सुख है, भूख नहीं लगती, प्यास नहीं लगती, थकावट नहीं आती, दु:ख नहीं आता। वहाँ केवल सुखों का उपभोग ही है। किन्तु ऋषियों की मान्यता है कि देव-लोक में मिलने वाला सुख कितना भी अधिक क्यों न हो और कितने भी अधिक लम्बे समय तक क्यों न हो, एक-न-एक दिन समाप्त होगा ही और फिर से हमें संसार में आना ही पड़ेगा। इसलिये स्वर्ग मनुष्य के जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता।

❖ (क्रमश:) ❖

परिवार के संरक्षक

स्वामी विदेहात्मानन्द

(१८९१ ई. में स्वामी विवेकानन्द ने उत्तरी-पश्चिमी भारत का भ्रमण करते हुए राजस्थान में भी काफी काल बिताया था। तब वे वहाँ के अनेक लोगों – विशेषकर खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह के घनिष्ठ सम्पर्क में आये। तदुपरान्त वे कन्याकुमारी तथा मद्रास होकर पुन: खेतड़ी आये। मुंशी जगमोहन लाल ने उनके साथ मुम्बई जाकर उन्हें अमेरिका के लिये विदा किया। यात्रा के दौरान उन्होंने राजा को कई पत्र लिखे। उनके पूरे जीवन व कार्य में राजपुताना तथा खेतड़ी-नरेश का क्या स्थान रहा – क्रमश: इन सभी विषयों पर सविस्तार चर्चा होगी। – सं.)

स्वामीजी के अमेरिका-प्रस्थान करने के बाद उनके परिवार तथा वराहनगर मठ के गुरुभाइयों के साथ खेतड़ी रियासत के बीच जो पत्र-व्यवहार हुए, उन्हीं में कुछ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि स्वामीजी द्वारा संन्यास लेकर भ्रमण हेतु चले जाने के बाद वे लोग किस प्रकार जीवन-यापन कर रहे थे और खेतड़ी-नरेश के मुंशी जगमोहन लाल राजा साहब के प्रतिनिधि-रूप में कैसे उनके पूरे परिवार और विशेषकर उनके भाई की पढ़ाई-लिखाई तथा स्वास्थ्य आदि की खोज-खबर लेते रहते थे। पहले तीन पत्र स्वामीजी के मँझले भाई महेन्द्रनाथ दत्त द्वारा लिखित हैं –

दिनांक **४ सितम्बर, १८९३**
७ रामतनु बोस लेन
सिमला, कोलकाता

सेवा में,
जगमोहन लाल (एस्क्वेयर),

प्रिय महोदय,

आपके सी.नोट की रसीद मैं इसके पहले इसलिये नहीं भेज सका, क्योंकि इंफ्लुएंजा के कारण अब भी मेरे सिर में चक्कर आ रहा है और शरीर के सभी अंगों में तीव्र पीड़ा का अनुभव हो रहा है। पिछले मंगलवार से मेरी भतीजी को भी बुखार चढ़ा हुआ है और सर्वोपरि हमारी बूढ़ी दादी (नानी) के अंग शिथिल हो गये थे, नाड़ी अनियमित हो गयी थी और मरणासन्न हो गयी थीं। हम लोग उन्हें गंगातट पर ले जाने की तैयारी कर रहे थे, सौभाग्यवश तभी उनकी हालत में सुधार हो गया। अब वे पहले से थोड़ी ठीक हैं।

मैं महाराज की बीमारी के बारे में सुनकर दुखी हूँ और आशा करता हूँ कि अब तक उन्होंने आरोग्य-लाभ कर लिया होगा। पिछले पत्र में आपने महाराज कुमार, अपने तथा महाराज के परिवार के बारे में कोई समाचार नहीं दिया है।

स्वामी शरत् चन्द्र (सारदानन्द) और स्वामी योगानन्द ने मेरे माध्यम से आपसे अनुरोध किया है कि यदि आपको असुविधा न हो, तो मेरे भैया द्वारा विदेश के विभिन्न स्थानों से भेजे गये पत्रों को, या अपने व्यक्तिगत अंशों को छोड़कर बाकी – विशेषकर उनके वर्णनात्मक अंशों को भेज दें, क्योंकि वे लोग विभिन्न स्थानों के बारे में जानने को उत्सुक हैं। मुझे नहीं मालूम कि यह आपको कैसा उचित लगेगा।

मेरा विचार है कि मैं स्वामी शरत् चन्द्र के साथ खेतड़ी जाकर महाराज के साथ व्यक्तिगत रूप से परिचित होऊँ। दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में कॉलेज बन्द होने पर ही ऐसा किया जायेगा। मुझे नहीं पता कि यह आपके लिये कितना सुविधाजनक होगा और महाराज को भी कितना उचित लगेगा। पर कुछ काल बाद ही मुझे वायु-परिवर्तन के लिये बाहर जाना होगा, मेरे सीने में पीड़ा होती है और मेरी भूख पूरी तौर से जा चुकी है।

इस पत्र की पंक्तियों की दशा को देखकर ही आप मेरी स्नायविक अवस्था को समझ जायेंगे। इस पत्र को लिखने में मुझे दो घण्टे से भी अधिक का समय लगा, क्योंकि बीच-बीच में मुझे कई बार ठहर जाना पड़ा था।

एक पत्र लिखना ही मेरे लिये काफी श्रम-साध्य हो जाता है। एक सप्ताह से भी अधिक काल से मैं कॉलेज नहीं जा सका। आपको ज्योंही मेरे भैया का कोई सूचना मिले, तो बीच-बीच में मुझे पत्र भेजते रहिये, क्योंकि एकमात्र वही एक ऐसा ज्योति-किरण हैं, जो मेरी माँ के हृदय को आच्छन्न किये हुए खेद को भेद सकता है। उत्तर के लिये उत्सुक –

आपका विश्वस्त, ***महेन्द्र नाथ दत्त***

पुनश्च – महाराज तथा उनके बाकी परिवार को मेरा दण्डवत प्रणाम सूचित करेंगे।

मोहिम

७ रामतनु बोस लेन

---

१३ सितम्बर, १८९३
७ रामतनु बोस लेन
सिमला, कोल.

सेवा में,
महाराजा बहादुर
खेतड़ी, राजपुताना

महाराज को ११ सितम्बर १८९३ का 'द नेशनल गार्जियन' भेजते हुए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। इसमें वायसराय द्वारा की

गयी खेतड़ी के महाराजा फतेहचन्द सिंह बहादुर की प्रशंसा छपी है। मैंने इस समाचार-पत्र को हम लोगों में से अनेक लोगों को दिखाया, जिसे देखकर सभी अत्यन्त आनन्दित हुए। मेरे भैया तथा परमहंस (देव) विषयक जानकारी से युक्त अखबारों, पत्रकों तथा पुस्तिकाओं का एक पैकेट अब तक महाराज को प्राप्त हो गया होगा। बंगाली पुस्तिका में दिवंगत ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) की उक्तियाँ हैं, चूँकि खेतड़ी में बंगालियों का निवास है, अत: मैंने उन्हें भिजवाना उचित समझा।

कोलकाता का प्राय: हर समाचार-पत्र मेरे भैया के बारे में कुछ-न-कुछ लिख रहा है, परन्तु उन सबको भेजना निरर्थक है, क्योंकि वे सारे समाचार बासी तथा संख्या में अत्यधिक हैं और सामान्यत: वे निकृष्ट कोटि के हैं।

अमेरिकी वाणिज्य-दूत के यहाँ बहुत-से अमेरिकी समाचार-पत्र हैं और उनमें से किसी भी समाचार-पत्र में मेरे भैया का समाचार हो, तो उसके बारे में पता लगाने के लिये हमने वहाँ आदमी भेजे हैं। परन्तु इसका क्या परिणाम निकला, इस विषय में अब तक हमें कुछ ज्ञात नहीं हो सका है। मैंने एक अन्य व्यक्ति को यहाँ के एक सार्वजनिक ग्रन्थालय में भेजा है ताकि अमेरिकी अखबारों में यदि कोई सूचना हो तो उसे लिखकर ले आये, परन्तु वह अभी तक लौटा नहीं है। जो समाचार-पत्र अच्छे होंगे, उन्हें मैं भेजूँगा।

कोलकाता की हलचल पूर्ण वेग से चल रही है, हर कोई ११ (अस्पष्ट) तारीख का स्टेट्समैन ढूँढ़ रहा है। अब उसकी कीमत में वृद्धि हो चुकी है।

महाराज ने मुंशीजी से सुना होगा कि वायु-परिवर्तन हेतु मैं गाजीपुर गया था। खून की उल्टीवाली मेरी पुरानी बीमारी विभिन्न अवसरों पर ४-५ बार उभर चुकी है। गाजीपुर में भी मुझे खून की उल्टी हुई। इस समय मेरे सीने का दर्द इतना भयंकर है कि मुझे भोजन के लिये बैठने में भी कठिनाई होती है। ऐसी पीड़ाएँ आसन्न खून की उल्टी की सूचक होती हैं।

महाराज समझ सकते हैं कि जब व्यक्ति ऐसी पीड़ा भोग रहा हो, तो उसके लिये पढ़ाई करना और परीक्षा में बैठना कितना कठिन होगा! न जाने किस अशुभ मुहूर्त में मैंने अपना बी.ए. का कोर्स शुरू किया। गाजीपुर के वायु-परिवर्तन से मुझे कोई लाभ नहीं हुआ, कभी-कभी मुझे साँस लेने में बड़ा कष्ट होने लगता है और उसके साथ ही हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। सम्भवत: मैं महाराज को सूचित कर चुका हूँ कि मुझे हमारे एक मित्र की सेवा करनी पड़ी, जिनका नाम फकीर भट्टाचार्य था, जो दुर्गापूजा के आरम्भ में दिवंगत हो गये। इसी बीमारी से काल-कवलित हो गये, जो रक्तवमन से शुरू हुआ तथा gallopping thysis से अन्त हुआ और मैंने उनका offal taste किया, जिसका मुझ पर बहुत बुरा प्रभाव हुआ। डॉ. बी.बी. घोष तथा कविराज मुझे चेतावनी देते रहते हैं कि मेरी अवस्था विगड़ रही है, अर्थात् मेरी thysis की ओर प्रवृत्ति है। इन सबके अतिरिक्त मुझे अपने कन्धों पर लटके भूखे पेटोंवाले परिवार के सदस्यों के बारे में भी चिन्तित रहना पड़ता है। ऐसी चिन्ताएँ कभी-कभी इतनी प्रबल हो उठती हैं कि इसके फलस्वरूप हृदय विदीर्ण हो उठता है और खून की उल्टी होने लगती है।

महाराज भलीभाँति जानते हैं कि वर्तमान परिस्थितियों में मैं एक पूर्णत: अकिंचन व्यक्ति हूँ।

मैं महाराज को सारी बातों से अवगत कराना चाहता हूँ, क्योंकि मेरा हृदय दु:खद भावों से परिपूर्ण है और मेरी पीड़ा क्रमश: बढ़ती जा रही है। संक्षेप में, मैं अपने पुराने व्यक्तित्व का एक भग्न रूप मात्र – एक दुखी जीवित व्यक्ति मात्र ही बचा हुआ हूँ और यदि यह बीमारी दूर नहीं हुई, तो सम्भवत: एक साल के भीतर ही मर जाऊँगा, क्योंकि मेरी सभी बहनें २३ वर्ष की आयु में ही काल-कवलित हुईं।

महाराज पहले ही मेरे प्रस्ताव को अस्वीकार कर चुके हैं और शायद अब भी अस्वीकार करेंगे और जैसा कि मैं भलीभाँति जानता हूँ कि मेरे भैया ने मुझे इसके विरुद्ध सावधान किया था, यद्यपि स्वामी र (रामकृष्णानन्द) तथा स्वामी शरत् (सारदानन्द) ने बाद में उन्हें अमेरिका में लिखा। मैं एक डूबते हुए आदमी के समान हूँ और सुरक्षित किनारे पहुँचने के लिये अपने पास संयोगवश आनेवाली प्रत्येक जड़ तथा शाखा को पकड़ता हूँ।

मैं कानून पढ़ने के लिये इंग्लैंड जाने का अपना प्रस्ताव आपको सूचित करता हूँ। इसमें ३ वर्षों के दौरान आनेवाला ७००० रुपयों का व्यय मेरी वर्तमान परिस्थितियों में नि:सन्देह अत्यधिक है। परन्तु कोलकाता का लगभग हर परिवार बेहतर शिक्षा के लिये अपने बच्चों को इंग्लैंड भेज रहा है। स्वामी र (रामकृष्णानन्द), स्वामी शरत् (सारदानन्द) और स्वामी जोगेन (योगानन्द) की मुझसे पूर्ण सहमति है, परन्तु चूँकि वे, विशेषकर सभी सांसारिक विषयों में, दूसरों पर अपना मत नहीं थोपना चाहते, (अत:) उन्होंने सर्वप्रथम मुझसे महाराज को लिखने के लिये कहा है और यदि जरूरत हुई तो अपनी इच्छा वे बाद में व्यक्त करेंगे, क्योंकि ऐसी चीजें उनकी जीवन-धारा से पूर्णत: पृथक् हैं। इस प्रस्ताव को मेरे जीवन की स्वर्णिम चाभी तथा लौह चाभी कहा जा सकता है। यह पूरी तौर से महाराज पर निर्भर है कि वे कोई भी उपयुक्त मार्ग चुने। इसके वर्तमान औचित्य पर मुझे ज्यादा बल देने की जरूरत नहीं और मैं इसे पूरी तौर से महाराज के ही विचार पर छोड़ता हूँ।

महाराज का परम आज्ञाकारी सेवक

महेन्द्र नाथ दत्त

दिनांक **८ अक्तूबर, १८९३**

गाजीपुर

मुंसिफ का बँगला

सेवा में,

जगमोहन लाल (एस्क्वेयर),

प्रिय महोदय,

काफी समय से मुझे आपके यहाँ का कोई समाचार नहीं मिला है, जिसने मुझे अत्यधिक चिन्तित कर दिया है। मुझे नहीं पता कि स्वामी रामकृष्णानन्द जी को खेतड़ी से कोई समाचार मिला है या नहीं, क्योंकि हम एक-दूसरे से ४०० मील से भी अधिक की दूरी पर हैं। मुझे लगता है कि मुझे जो अन्तिम पत्र मिला था, उसे महाराज के हस्ताक्षर के द्वारा अनुमोदित किया गया था। और पिछले करीब एक महीने से सब कुछ अज्ञात है। अब तक आपके यहाँ मेरे भैया के कई पत्र पहुँचे होंगे और यदि महाराज कृपापूर्वक अनुमति दें और यदि आपके लिये सुविधाजनक हो, तो मुंशिफ (मेरे मेजबान, जो मेरे भैया के एक निष्ठावान प्रशंसक हैं) भी उन्हें देखना चाहेंगे। वे इस कृपा के लिये महाराज तथा आपको अपना धन्यवाद ज्ञापित करने को कहते हैं। परन्तु इस विषय में आप अपनी सुविधा तथा समय के अनुसार करें।

यहाँ के सभी लोग बड़े ही सज्जन तथा अनुग्रहशील और मेरे भैया के निष्ठावान तथा सच्चे प्रशंसक हैं। मेरे मेजबान – मुंशिफ संसार के लोगों से कहीं ऊपर हैं। ... वे एक बड़े विद्वान् तथा भाषाविद् हैं और उन्होंने 'पाणिनी' के संस्कृत व्याकरण का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, जो प्रो. मैक्समूलर के मतानुसार एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यदि आप उनके लिये कुछ उपयुक्त ग्राहक प्राप्त कर सकें, तो वे इसके लिये आपके बड़े आभारी होंगे। 'पाणिनी' पर अधिकार करने का यह सबसे सरल उपाय है।

उन्होंने मुझसे तथा मेरे भैया से महाराज के बारे में काफी कुछ सुन रखा है और यदि महाराज अनुमति दें, तो यह ग्रन्थ उन्होंने आपको समर्पित करने की इच्छा व्यक्त की है। पर इस विषय में उन्हें आपकी इच्छा का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिये और वापसी डाक से मुझे उनकी इच्छा से अवगत करायें।

जहाँ तक मेरे स्वास्थ्य का प्रश्न है, कोलकाता की अपेक्षा उसमें कोई सुधार नहीं हुआ है। कई दिनों तक मेरे सीने में भयंकर पीड़ा हुई। अब मुझे स्पष्ट रूप से तो पीड़ा का अनुभव नहीं होता, परन्तु दुर्बलता इतनी अधिक है कि पाँच मिनट के लिये टहलने जाना भी मेरे लिये बड़ा श्रमसाध्य कार्य हो उठा है और पिछले ७ दिनों से मैं इस घर से बाहर नहीं निकला हूँ। मेरे शरीर का रंग पीला पड़ गया है। कोलकाता से रवाना होने के पूर्व ही मेरी खून की उल्टी रुक गयी थी, लेकिन कहा नहीं जा सकता कि किस दिन वह फिर शुरू हो जाय। इसके बावजूद, चूँकि मेरी बी.ए. की परीक्षा निकट है, इस कारण मुझे करीब रात भर अध्ययन करना पड़ता है। मुंशिफ इस पर बड़े नाराज होते हैं और कभी-कभी तो मजेदार ढंग से लैम्प को बुझाकर दियासलाई को छिपाकर रख देते हैं। फिर, मुझे इस बीमारी से मुक्ति पाने की कोई सम्भावना भी नहीं दिखती। यदि मैं अधिक पढ़ाई करता हूँ, तो बीमारी में तीव्र गति से वृद्धि होने लगती है।

मेरा अनुमान है कि शिशु राजकुमार अब भलीभाँति चलने लगे होंगे, क्योंकि उनकी आयु अब करीब दो वर्ष हो चुकी है। मैंने अखबारों में देखा कि देश में एक अच्छे प्रशासक के आदर्श के रूप में वायसराय ने महाराज की बड़ी सम्मानजनक भाषा में प्रशंसा की है। हमने इसे अपने कई मित्रों को दिखाया।

विशेष रूप से मुझे महाराज के परिवार की कुशलता से अवगत करायें। (ग्रन्थ के) समर्पण पत्र के मामले में, उसके औचित्य के प्रश्न पर आप अपने विवेक का इस्तेमाल कीजिये। यहाँ का पानी खारा और जलवायु ठीक नहीं है। यदि सम्भव हुआ, तो मैं यहाँ से कहीं अन्यत्र जाना चाहता हूँ। परन्तु (इसके पूर्व) मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा।

आपका विश्वस्त

महेन्द्र नाथ दत्त

पुनश्च – मैं आपसे शीघ्र उत्तर पाने को व्यग्र हूँ।

एम.एन.दत्त

मेरा पता

एम.एन.दत्त

द्वारा श्रीश चन्द्र बसु, बी.ए., एल.एल.बी., बी.टी.

मुंशिफ, गाजीपुर

अगले पत्र में वराहनगर मठ से स्वामी रामकृष्णानन्द जी ने मठ का समाचार देते हुए स्वामी विवेकानन्द के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की है –

कोलकाता

१० अक्तूबर, १८९३

प्रिय मुंशीजी,

स्वामीजी के पत्रों को कृपापूर्वक हमें भेजने के लिये धन्यवाद। हमने उन सभी को आनन्दपूर्वक पढ़ा और आपको वापस भेजने के लिये महेन्द्रनाथ को लौटा दिया। मुझे आशा है कि अब तक वे आपको प्राप्त हो गये होंगे। इस दौरान यदि आपको स्वामीजी के विषय में कोई समाचार मिला हो, तो कृपया हमें भी अनुग्रहीत करें। स्वामी अभेदानन्द अपने रोग से पूर्णत: मुक्त हो चुके हैं। अब वे कुछ कदम बाहर भी टहल सकते हैं। महेन्द्र नाथ को वायु-परिवर्तन के लिये गाजीपुर भेजा गया है। इस माह के अन्त तक वह लौट

आयेगा। सुना है कि उनकी हालत वहाँ ठीक नहीं है। जैसा कि मैं समझता हूँ, उसकी बीमारी अनियमित आदतों के कारण नहीं, बल्कि मानसिक उद्वेग तथा वर्तमान कठिनाइयों को दूर करने की चिन्ताओं के कारण हैं; और जब तक उनका निराकरण नहीं हो जाता, मुझे नहीं लगता कि वह अच्छे स्वास्थ्य तथा आनन्द में रह सकेगा।

महाराज, उनके कुमार, उनके सभी प्रियजन और आपको भी मेरी शुभ-कामनाएँ। मेरा विश्वास है कि महाराज के शिशु कुमार सकुशल होंगे और अच्छे स्वास्थ्य का उपभोग कर रहे होंगे। मेरा विश्वास है कि महाराज और उनके पूरे परिवार का भी सब ठीक चल रहा होगा। आशा करता हूँ आप सकुशल होंगे। यहाँ हम सभी सकुशल हैं।

महाराज के लिये आशीर्वाद तथा प्रार्थनाओं के साथ

आपका विश्वस्त

रामकृष्णानन्द

द्वारा वैकुण्ठ नाथ सान्याल

गवर्नमेंट स्टेशनरी ऑफिस, कोलकाता

अगले पत्र में महेन्द्रनाथ दत्त ने भी अमेरिका में गये हुए अपने ज्येष्ठ भ्राता के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की हैं –

२१ अक्तूबर, १८९३

मुंसिफ का बँगला

गाजीपुर (एन.डब्ल्यू.पी.)

सेवा में,

जगमोहन लाल एस्क्वेयर,

खेतड़ी

प्रिय महोदय,

काफी समय से वहाँ से – महाराज या आपके पास से कोई पत्र नहीं मिला है, जिसके कारण मैं बड़ा चिन्तित हूँ। मैं भलीभाँति जानता हूँ कि अपने कार्यों में पूर्ण रूप से व्यस्त रहने के कारण महाराज को हर किसी को पत्र लिखने का समय नहीं मिलता होगा, परन्तु आप तो अपनी सुविधा तथा इच्छा के अनुसार बीच-बीच में लिख ही सकते हैं।

सबसे अधिक चिन्तित मैं अपने भैया के बारे में समाचारों को लेकर हूँ, क्योंकि काफी काल से हमें उनके बारे में कोई सूचना नहीं मिली है। यदि आप कृपापूर्वक उनके बारे में विशेष कुछ बता सकें, जिनके लिये मैं इतना अधिक चिन्तित हूँ, तो मुझे अत्यधिक आनन्द होगा।

परन्तु इसके साथ ही आप महाराज, कुमार, अपने तथा महाराज के परिवार के अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य के विषय में भी समाचार लिखें।

यदि अमेरिका से कोई पत्र आया हो, और यदि महाराज अनुमति दें, तो क्या उन्हें कोलकाता के ७ रामतनु बोस लेन के पते पर भेजना उचित होगा! इसके औचित्य या अनौचित्य के विषय में आपका ही निर्णय अन्तिम होगा। कल सुबह ७ बजे मैं यहाँ से विदा लेकर २३ तारीख को कोलकाता पहुँचूँगा। वहीं से हमारा आगे का पत्र-व्यवहार होगा।

काफी काल से घर से दूर रहने के कारण मैं आपको अपने परिवार के समाचारों से अवगत नहीं करा सकता।

आपका विश्वस्त

२१-१०-९३ ***महेन्द्र नाथ दत्त***

कोलकाता का पता

७ रामतनु बोस लेन

सिमला, कोल.

स्वामीजी के एक अन्य गुरुभाई स्वामी शिवानन्द द्वारा लिखित अगले पत्र से ऐसा लगता है कि वे स्वामीजी के विषय में साक्षात् जानकारी लेने के लिये खेतड़ी जाने का भी विचार कर रहे थे –

आगरा

२६ अक्तूबर, १८९३

प्रिय राजा साहब बहादुर

आपके १२ तारीख के कृपापत्र से मुझे आनन्द हुआ। आपसे मिलने का मेरा उद्देश्य केवल स्वामी विवेकानन्द के विषय में कुछ जानने का ही था, क्योंकि मैंने सुना है कि वे सर्वदा आपके साथ पत्र-व्यवहार करते रहते हैं, (लेकिन) अनेक भारतीय समाचार-पत्रों से मुझे स्वामीजी की प्रत्येक सार्वजनिक गतिविधि की सूचना मिल जाती है। अत: मैंने निश्चय किया है कि अपनी वर्तमान यात्रा में मैं बाँदीकुई से रेवाड़ी तथा खेतड़ी की ओर न मुड़कर, बल्कि जयपुर की तरफ और वहाँ से मुम्बई की तरफ जाऊँगा।

मुझे आशा है कि कभी-न-कभी मेरी आपके साथ भेंट होगी। आपको, नवजात शिशु तथा जगमोहन लाल को मेरी श्रेष्ठ शुभेच्छाएँ।

आपका शुभाकांक्षी,

शिवानन्द

* उपरोक्त सभी पत्र – खेतड़ी पेपर्स, १९९९ से अनूदित

❖ (क्रमशः) ❖
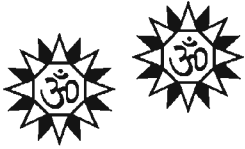
स्वामी विवेकानन्द के संस्मरण (२)
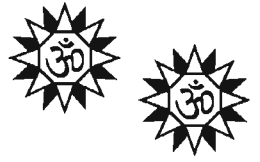
इडा आन्सेल (भगिनी उज्ज्वला)

(धन्य थे वे लोग, जिन्होंने स्वामीजी के काल में जन्म लिया तथा उनका पुण्य सान्निध्य प्राप्त किया । उनके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आनेवाले अनेक लोगों ने अपनी अविस्मरणीय स्मृतियाँ लिपिबद्ध की हैं, जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थों में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत संस्मरण अद्वैत आश्रम द्वारा प्रकाशित 'Reminiscences of Swami Vivekananda' ग्रन्थ से गृहीत तथा अनुवादित हुआ है। – सं.)

(पॅसाडेना में ही) स्वामीजी को जब ओकलैंड के युनिटेरियन चर्च में व्याख्यान देने का आमंत्रण मिला, तो उन्होंने शान्ति से पूछा कि क्या वह भी उनके साथ उत्तर की ओर जाना चाहेगी ! वे बोले, "मेरे साथ जाने की इच्छा हो तो किसी भी कारण से उसे स्थगित न करना।" अत: इस प्रकार शान्ति सैन-फ्रांसिस्को और बाद में कैम्प अर्विंग गयी। वहाँ वह स्वामीजी की जरूरतों को पूरा करने तथा उनकी सुविधा के कार्यों में लगी रहती थी। एक दिन सुबह शान्ति भोजन बनाने के कार्य में व्यस्त थीं और इधर कक्षा का समय हो गया था। स्वामीजी ने पूछा, "शान्ति, क्या तुम ध्यान करने नहीं आ रही हो?" उत्तर में वह बोली, "आऊँगी, पर पहले इस झोल को उबालना होगा; इसे पूरा करके आ रही हूँ।"

सुनकर स्वामीजी बोले, 'अच्छा, ठीक है। मेरे गुरुदेव कहते थे कि सेवा के लिये आवश्यकता हुई तो ध्यान को छोड़ा जा सकता है।"

मेरे सुदीर्घ जीवन में दो रातें कभी विस्मृत होनेवाली नहीं हैं। उन दोनों में से किसी एक का भी याद करने से सारे दु:ख-कष्ट भूल जाते हैं। उनमें से पहली रात स्वामी तुरीयानन्द के साथ शान्ति आश्रम में बीती थी, जिसके विषय में मैं पहले ही लिख चुकी हूँ। दूसरी है – २ मई १९०० को कैम्प टेलर में स्वामीजी की पहली रात। मैं अपनी आँखें मूँदकर देखती हूँ – संध्या के झीने अन्धकार में वे खड़े हैं, सामने प्रज्वलित धूनी से चिनगारियाँ छिटककर उड़ रही हैं और ऊपर द्वितीया का चन्द्र उगा हुआ है। वे दीर्घकालीन व्याख्यान दौरे से थके हुए थे, परन्तु वहाँ आकर विश्रान्ति तथा आनन्द का अनुभव कर रहे थे । उन्होंने कहा, "हम अरण्य से ही जीवन आरम्भ करते हैं और वही इसे समाप्त भी करते हैं, परन्तु दोनों अवस्थाओं के बीच कितना विराट् अनुभव हो जाता है।" फिर एक छोटे से व्याख्यान के बाद जब हम अपने प्रतिदिन के ध्यान के लिए प्रस्तुत हो रही थीं, तब उन्होंने कहा, "तुम लोग चाहे जिस भी विषय पर ध्यान करो, परन्तु मैं तो सिंह के हृदय पर ध्यान करूँगा, क्योंकि इससे शक्ति मिलती है।" इसके बाद ध्यान के दौरान हमें जिस शान्ति, शक्ति तथा आनन्द की अनुभूति हुई, उसका शब्दों में वर्णन करना सर्वथा असम्भव है।

अगले दिन सारे समय वर्षा होती रही। सुबह जलपान के बाद स्वामीजी श्रीमती बेल की खाट पर बैठकर काफी काल तक वार्तालाप करते रहे; यद्यपि उस समय भी उन्हें बुखार था। उस रात वे बड़े बीमार थे, इतने बीमार कि उन्होंने एक वसीयतनामे में सब कुछ अपने गुरुभ्राताओं के नाम लिख दिया। शान्ति तथा कल्याणी उनकी देखभाल में लगी हुई थीं। मैं मिस बेल के साथ जिस तम्बू में ठहरी हुई थी, स्वामीजी का तम्बू ठीक उसके सामने था। मैं अब भी देख रही हूँ कि उस मूसलाधार वर्षा के बीच शान्ति, भीगते हुए भी स्वामीजी के उस तम्बू के ऊपर एक और कैनवास फैला रही है।

अगला दिन शनिवार था और उस दिन मैं मिस बेल के साथ सैन-फ्रांसिस्को गयी। जब हम रविवार को अपराह्न में लौटीं, तब तक स्वामीजी की हालत में काफी सुधार था। यद्यपि उन्हें विश्राम के लिए कैम्प में लाया गया था, तो भी वे प्रतिदिन मिस बेल की खाट पर बैठकर काफी समय तक बातें करते हुए कहानियाँ सुनाते और प्रश्नों के उत्तर देते। उन्हें आशा थी कि प्राच्य तथा पाश्चात्य के बीच बेहतर समझ विकसित होगी और इससे दोनों को ही लाभ होगा। उन्होंने बताया कि उन्हें टॉमस-ए-केम्पिस से कितना प्रेम था और उनके द्वारा लिखित 'ईसानुसरण' तथा गीता – इन दो ग्रन्थों को साथ लेकर उन्होंने पूरे भारत का भ्रमण किया था। 'ईसानुसरण' ग्रन्थ के एक उद्धरण के साथ सैन-फ्रांसिस्को के अपने एक व्याख्यान का उपसंहार करते हुए उन्होंने कहा था, "सभी आचार्य मौन हो जायँ, सभी ग्रन्थ नीरव हो जायँ, हे प्रभो ! केवल तुम्हारी ही वाणी मेरे हृदय में ध्वनित हो !"

सुबह की कक्षा तथा ध्यान के बाद स्वामीजी भोजन बनाने में रुचि लेते या कभी-कभी उसमें सहायता करते। वे हमारे लिये सब्जी बनाते समय सील-लोढ़ा लेकर तम्बू की फर्श पर बैठ जाते और सबको दिखाते कि भारत में किस प्रकार मसाला पीसते हैं। हम लोगों की कटोरे में रखकर छुरे से
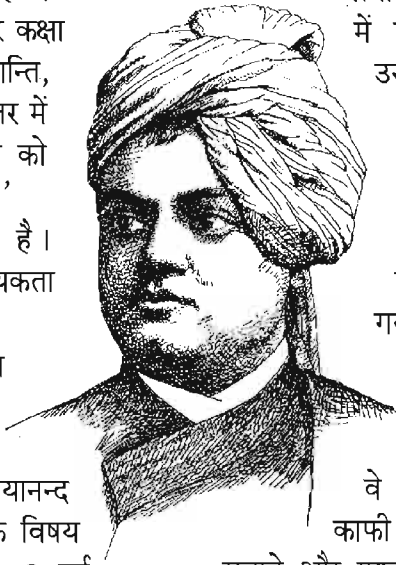
काटने की तुलना में इस विधि से मसाला काफी महीन हो जाता था। इससे भोजन हम लोगों के लिये काफी तीखा हो जाता था, परन्तु स्वामीजी उसके साथ और भी लाल मिर्च लेकर बैठते। भोजन करते समय वे अपने सिर को पीछे ले जाकर और हाथ को गोलाकार घुमाकर वे अपने मुख में मिर्च डालते। एक दिन उन्होंने मेरे हाथ में एक मिर्च देते हुए कहा, "इसे खाकर देखो; इससे तुम्हारा भला होगा।" स्वामीजी यदि विष देते तो भी मैं उसे खाती; इसीलिए मैंने उनके आदेश का पालन किया, पर उसका फल बड़ा पीड़ादायी हुआ और उन्हें इस पर बड़ा मजा आया। उस दिन अपराह्न में वे बीच-बीच में पूछते रहे, "तुम्हारी भट्ठी (पेट) कैसी जल रही है?" एक अन्य दिन उन्होंने हम लोगों के लिये मिश्री बनायी और उन्होंने समझाया कि कैसे काफी देर तक उबालते हुए उसकी अशुद्धियाँ निकाल दी जाती हैं और इस प्रकार सबसे शुद्ध प्रकार की मिश्री तैयार हो जाती है।

हम लोगों का भोजन बड़ा मजेदार तथा अनौपचारिक होता था और उसके साथ-साथ चुटकुले तथा कथा-कहानियाँ भी चलती रहती थीं। शान्ति अलास्का में रह चुकी थी और वह कठोर जीवन की अभ्यस्त थी। उसका बेपरवाह भाव तथा परम्पराओं के प्रति उदासीनता स्वामीजी को बड़ा पसन्द था। एक दिन जलपान के समय उन्होंने हाथ बढ़ाकर उसके प्लेट से थोड़ा-सा खाना उठा लिया और बोले, "हम दोनों ही घुमक्कड़ हैं, अत: उचित होगा कि हम एक ही प्लेट से खायें।" उन्होंने उससे यह भी कहा, "तुम सदा के लिये मेरे जीवन की एक अंग बन चुकी हो।" और कल्याणी से वे बोले, "यदि तुम सर्वोच्च पर्वत पर भी निवास करती, तो मेरी देखभाल करने के लिये तुम्हें नीचे नहीं उतर आना पड़ता!" उसने उत्तर दिया, "मैं जानती हूँ, स्वामीजी।"

स्वामीजी की नजरों से कुछ भी बच नहीं पाता था। एक मैक्सिकन या अमेरिकी रेड-इंडियन लड़का वहाँ कुछ काम किया करता था। एक दिन स्वामीजी ने देखा कि हम लोगों के जलपान करते समय वह खड़ा-खड़ा देखा करता था। स्वामीजी का ध्यान इस ओर गया। बाद में उन्होंने उस लड़के के साथ बातचीत की, तो उसने बताया कि उसे कॉफी नहीं दी गयी है। वह बोला, "काला आदमी कॉफी पसन्द करता है, गोरा आदमी कॉफी पसन्द करता है और लाल आदमी कॉफी पसन्द करता है।" यह सुनकर स्वामीजी को बड़ा मजा आया। उन्होंने लड़के को काफी देने को कहा और पूरे अपराह्न के समय वे बारम्बार बालक की उन उक्तियों को दुहराकर हँसते रहे।

शाम के समय सभी लोग दूर-दूर तक टहलने जाते। और लौटने के बाद दिन भर के सारे क्रिया-कलापों के भव्य उपसंहार के रूप में धूनी के पास बैठकर बातें होतीं और उसके बाद ध्यान होता। कहानियाँ सुनाने तथा प्रश्नों के उत्तर देने के बाद श्लोकों की आवृत्ति करने के पूर्व स्वामीजी हमें ऐसा कोई विषय देकर उसी पर ध्यान करने को कहते, जैसे कि 'मैं स्थिर और निर्भय हूँ।' एक दिन प्रात:काल उन्होंने हमें 'परम सत्य, एकत्व तथा मुक्ति' पर एक प्रेरणादायी व्याख्यान दिया और उस दिन संध्या को ध्यान का विषय था, 'मैं सत्, चित् और आनन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ।'

इस प्रकार गम्भीर सुबहें, आनन्दपूर्ण दुपहरियों और उदात्त सन्ध्याओं के साथ वे दिन काफी तेजी से बीत गये।

जब मिस बेल ने मुझे वह गर्मी का मौसम अपने साथ कैम्प अर्विंग में बिताने का आमंत्रण दिया था, उस समय इस बात पर भी सहमति हुई थी कि हर शनिवार को सुबह मैं सैन-फ्रांसिस्को जाऊँगी, अपराह्न में संगीत की कक्षा लूँगी और रविवार को उनके व्याख्यान का द्रुतलिपि में लिखने का प्रयास करूँगी और उसके बाद लौट आऊँगी। दूसरे सप्ताहान्त में किसी कारणवश (जो अब मुझे भूल चुका है), मिस बेल शुक्रवार के अपराह्न में अकेली ही सैन-फ्रांसिस्को चली गयीं। शनिवार को मुझे भी वहाँ जाना था। जब मैं पिछली बार की भाँति ट्रेन पकड़ने के लिये तैयार हो रही थी, तभी स्वामीजी मुझसे बोले, "क्यों जा रही हो?" मैंने कहा, "मुझे जाना ही होगा, स्वामीजी। वहाँ जाकर मुझे संगीत सिखाना है।" बाद में मुझे हमेशा ही अपने इस उत्तर पर खेद होता रहा है, क्योंकि कक्षा में जाने का मेरा उद्देश्य धन कमाना नहीं था। मिस बेल का व्याख्यान ही मेरा वास्तविक उद्देश्य था।

स्वामीजी बोले, "तो फिर जाओ; पाँच लाख डॉलर कमाकर मुझे मेरे भारतीय कार्य के लिए भेज देना।" मुझे साथ लिए वे ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ चढ़कर रेलवे लाइन तक गए और हाथ हिलाकर गाड़ी रुकवाई। वहाँ कोई स्टेशन न था, यात्रियों के संकेत पर ही वहाँ गाड़ी ठहरती थी। स्वामीजी का चलना-फिरना बड़ा भव्य था और उनकी दृष्टि कभी नीचे नहीं झुकती, सदा आकाश की ओर ही उठी रहती थी। किसी ने उनके बारे में कहा था कि वे शायद ही कभी टेलीग्राफ के खम्भों से नीचे का कुछ देख पाते हैं।

ट्रेन के धीमे होने पर जब उसका इंजन मेरे पास से होकर गुजरा, तो मैंने सुना, ट्रेन का खलासी अपने ड्राइवर से कह रहा था, "अरे, यह Sky-pilot (आकाश-चालक) कौन है?" मैंने कभी यह शब्द नहीं सुना था और पहले तो मुझे इसके अर्थ के विषय में उलझन हुई। बाद में मेरी समझ में आया कि इसका अर्थ होगा एक धर्माचार्य। जिस किसी ने स्वामीजी को देखा है, उसे सहज ही यह बात समझ में आ जायेगी कि वे एक ऐसे ही धर्माचार्य थे।

उस समय मैं सैन-फ्रांसिस्को गयी और इसके लिये मुझे सदा पश्चाताप बना रहा, क्योंकि इसके बाद शीघ्र ही स्वामीजी

ने कैम्प अर्विंग से विदा ली। उनके भारतीय कार्य हेतु पाँच लाख डॉलर मैं कभी कमा नहीं सकी, परन्तु मैं कभी अपनी यह बचकानी आशा नहीं छोड़ सकी कि सम्भव है किसी चमत्कारिक रूप से यह बात पूरी हो जाय। स्वामी तुरीयानन्द ने अनेकों बार कहा, ''माँ असम्भव को भी सम्भव बना सकती हैं।''

स्वामीजी की कैम्प अर्विंग से विदा लेने का दिन मुझे ठीक याद नहीं है, परन्तु उनके द्वारा लिखित विभिन्न पत्रों से पता चलता है कि २६ मई तक वे सैन-फ्रांसिस्को में ही थे और डॉ. एम. एच. लोगन के मेहमान थे। वे उनके घर ठहरे थे और २६, २८ तथा २९ मई को गीता पर तीन व्याख्यान दिये थे। १७ जून को उन्होंने लास-एंजेलस से लिखा, ''कुछ दिनों के भीतर ही मैं शिकागो के लिये रवाना हो रहा हूँ।'' और ११ जुलाई को वे न्यूयार्क में थे।

टाम एलेन तथा उनकी पत्नी एडिथ (अजय तथा विरजा) सबसे पुराने मित्रों में थे और उन लोगों ने स्वामीजी के विषय में अपनी पहली धारणाएँ, उनके साथ अपने अनुभव और उनसे प्राप्त हुए प्रचुर लाभ के बारे में मुझे अनेकों बार बताया था। १९०० ई. में जब स्वामीजी ओकलैंड में आये, उस समय एडिथ (विरजा) काफी बीमार थी, इसलिये टॉम (अजय) अकेले ही उन हिन्दू संन्यासी के व्याख्यान सुनने गये, जिनके विषय में समाचार-पत्रों में विज्ञप्ति छपी थी। जब वे व्याख्यान सुनकर लौटे, तो इतने उत्तेजित थे कि वे अपना उत्साह सँभाल पाने में असमर्थ थे। वे बोले, ''मैं एक ऐसे व्यक्ति से मिलकर आ रहा हूँ, जो मनुष्य नहीं देवता हैं। उन्होंने केवल सत्य का उपदेश दिया।'' एडिथ ने पूछा कि उन्होंने ऐसी कौन सी बात कही, जिसने उसे इतना अधिक प्रभावित किया है! टॉम ने बताया कि उनकी दो सबसे अद्भुत बातें थीं :

''भलाई तथा बुराई दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और एक के बिना दूसरे का अस्तित्व असम्भव है; जबकि होम ऑफ ट्रुथ के मतानुसार सब कुछ अच्छा है और बुराई नाम की कोई चीज नहीं है।'' उसे गहराई से प्रभावित करने वाली दूसरी उक्ति थी – ''गाय कभी झूठ नहीं बोल सकती, परन्तु वह सर्वदा गाय ही रहेगी; जबकि मनुष्य झूठ बोल सकता है, परन्तु वह देवता भी हो सकता है।''

टॉम ने तत्काल स्वामीजी के व्याख्यानों के समय सेवा देना आरम्भ कर दिया और द्वारपाल का उत्तरदायित्व सँभाल लिया। स्वस्थ होने के बाद एडिथ भी उनके भाषण सुनने जाने लगीं। एक दिन टॉम प्रवेश-शुल्क के पैसे गिन रहे थे और वह द्वार के पास खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थी, तभी स्वामीजी ने उसे देखा और उससे बोले, ''मैडम, इधर आइये।'' उसके पास आ जाने पर वे बोले, ''मुझसे व्यक्तिगत रूप से मिलने की इच्छा हो, तो मेरे आवास पर आइए। वहाँ पैसे नहीं देने पड़ते; सब कुछ मुफ्त है।''

उसने पूछा – ''कब आऊँ?''

उत्तर मिला – ''कल सुबह नौ बजे।''

अगले दिन सुबह वह उनके निवास पर पहुँची और दीवाल में बनी एक खिड़की के पास बैठ गयी। स्वामीजी किसी स्तोत्र की आवृत्ति करते हुए भीतर आये और खिड़की की दूसरी ओर बैठ गये और बोले, ''कहिये मैडम।'' एडिथ इतनी भावविभोर हो उठी कि कुछ भी बोल नहीं सकी और काफी देर तक अपनी रुलाई को रोक न सकी। स्वामीजी बोले, ''कल सुबह इसी समय आना।'' वह उपदेश के लिये उनके पास कई बार गयी। उन्होंने उसे कुछ सहज प्राणायाम की क्रियाएँ सिखायीं और सावधान कर दिया कि उनका अभ्यास केवल उनकी उपस्थिति में ही करे। उन्होंने बताया कि उनके मतानुसार तत्कालीन पश्चिम में होम ऑफ ट्रुथ का कार्य ही सर्वश्रेष्ठ है और इस बात की प्रशंसा की कि उसके कार्यकर्ता, कुछ अन्य लोगों के समान, आध्यात्मिक सहायता के लिये कोई शुल्क नहीं लेते।

एक बार स्वामीजी ने कहा था, ''मैं एक ऐसे व्यक्ति का शिष्य हूँ जो अपना नाम तक नहीं लिख पाते थे, तथापि मैं उनके जूते तक खोलने के योग्य नहीं हूँ। कितने ही बार मेरे मन में आया है कि काश यदि मैं अपनी बुद्धि को गंगाजी में विसर्जित कर पाता!''

एक महिला ने कहा, ''परन्तु स्वामीजी, आपके गुणों में आपकी बुद्धिमत्ता ही तो हमें सर्वाधिक पसन्द है।'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''मैडम, इसका कारण यह है कि आप भी मेरे ही समान मूर्ख हैं।''

पिछली कक्षा के अन्त में एडिथ धीरे से चली जा रही थी कि स्वामीजी ने पुकारा, ''मैडम, आप वापस आइये। और भोजनालय में जाकर बैठिये।'' बाकी सबको विदा करने के बाद अन्दर गये उससे रात के खाने तक ठहर जाने को कहा। इसके बाद उससे आलू तथा प्याज छिलने को कहकर स्वयं भोजन पकाने में जुट गये। इस प्रकार कार्य करते समय वे गीता के श्लोकों की आवृत्ति भी करते जा रहे थे। बीच में एक बार ठहरकर उन्होंने उसके १८वें अध्याय का ६१वाँ श्लोक सुनाया –

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।।

– ''ईश्वर सभी जीवों के हृदय में निवास करते हैं और सबको अपनी माया के चक्के पर यंत्रवत् घुमाते रहते हैं।'' फिर वे बोले, ''देखिये मैडम, उन्होंने हमें अपने चक्के पर चढ़ा रखा है। हम भला कर ही क्या सकते हैं?''

जब स्वामीजी कुछ दिनों के लिए अलामेड़ा के 'होम

ऑफ ट्रूथ' में ठहरे थे, तब उनकी भोजन बनाने में सहायता करते हुए एडिथ के दिन बड़े आनन्द में बीते थे। जिस समय भीतर के कमरे में उपासना आदि चल रही होती, उस समय ये दोनों रसोईघर में भोजन पकाने में व्यस्त रहते। वहाँ वे प्रसन्नचित्त तथा अनौपचारिक भाव में रहते, पर इस दौरान भी प्रासंगिक घटनाओं के माध्यम से भी एडिथ को कई शिक्षाएँ मिल जातीं। एक दिन वह अपनी हरी पोशाक पहनकर आयी थी, जिसे वह बहुत पसन्द करती थी और जिस पर उसे बड़ा नाज था। सहसा कढ़ाई में से थोड़ा-सा मक्खन उसके वस्त्रों पर जा गिरा। उसे यह एक बड़ी दुर्घटना प्रतीत हुई और वह इस पर खेद प्रकट करने लगीं। परन्तु स्वामीजी उस ओर जरा भी ध्यान दिये बिना अपने श्लोकों की आवृत्ति करते हुए अपने कार्य में लगे रहे।

एक बार वे लोग कुछ अचार खरीदकर उसे काठ की एक तश्तरी में ले आये। अचार का थोड़ा-सा रस बहकर स्वामीजी के हाथ में लग गया। उन्होंने तत्काल अपनी अँगुलियों को मुख में डाल लिया और रस को चाटने लगे। उनका यह आचरण अभद्रतापूर्ण लगा, अत: एडिथ घबराकर बोल उठी, "यह क्या स्वामीजी !" परन्तु स्वामीजी बोले, "यह तुच्छ बाह्य आचरण! तुम्हारे देश में यही तो कठिनाई है! तुम लोग सर्वदा बाहर से अच्छा दिखाने के प्रयास में लगे रहते हो।"

टॉम (अजय) ने मुझे अपनी अनेक अनुभूतियों के बारे में बताया था। वे स्वामीजी के व्याख्यानों के समय उनके सहायक का कार्य करते थे और कई बार श्रोताओं से उनका परिचय भी कराते थे। जब वे पहली बार एक साथ मंच पर खड़े हुए, तो टॉम को ऐसा प्रतीत हुआ मानो स्वामीजी चालीस फीट उँचे हों और उनका अपना आकार केवल छह ईंच हो। इसके बाद से उनका परिचय कराते समय वे हमेशा नीचे ही खड़े होते।

एक बार स्वामीजी ने भारतवर्ष के बारे में व्याख्यान शुरू करने के पूर्व टॉम से कहा, "जब मैं भारत के बारे में बोलने लगता हूँ, तो ख्याल ही नहीं रहता कि कहाँ ठहरूँ; अत: दस बजे तुम मुझे स्मरण करा देना।" इसीलिए टॉम हॉल के अन्तिम छोर पर जा खड़े हुए और दस बजते ही जेब से घड़ी निकालकर उसकी जंजीर को पकड़कर पेंडुलम के समान झुलाने लगे। थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने उनके इशारे को देख लिया और बोले, "मैंने उन लोगों से कह रखा था कि दस बजते ही मुझे ठहरा देना; परन्तु उन्होंने अभी से घड़ी हिलानी शुरू कर दी है, जबकि मैंने अपना वक्तव्य आरम्भ तक नहीं किया है !" तथापि स्वामीजी ने अपना व्याख्यान रोक दिया। तभी से टॉम एलेन आजीवन प्रतिदिन उसी घड़ी को अपने साथ रखते और उपयोग करते थे।

इस्टर की रविवार की रात थी। मित्रों की एक टोली 'होम ऑफ ट्रूथ' के बरामदे में बैठी हुई थी और स्वामीजी अमेरिका के अपने कुछ अनुभवों का वर्णन कर रहे थे। उन्होंने बताया कि एक बार उन्हें अपने पाँव की चिकित्सा के लिये एक महिला Chiropodist (पदरोग-विशेषज्ञ) को दिखाने की सलाह दी गयी थी। परन्तु उस महिला के बारे में वे कोई अच्छी धारणा नहीं बना सके थे, क्योंकि वे सदा ही उसका Lady toe-doctor (महिला अँगूठे की डॉक्टर) के रूप में उल्लेख करते और कहते, "मुझे जब भी उसकी याद आती है, तो मेरे अंगूठे में दर्द होने लगता है।"

उसी शाम को किसी ने स्वामीजी से त्याग-संन्यास के विषय में पूछा था। उत्तर में उन्होंने कहा था, "बच्चो, तुम लोग भला संन्यास के विषय में क्या समझोगे? यदि तुम लोग मेरे शिष्य होना चाहते हो, तो तुम्हें बिना शिकायत तोप का भी सामना करने को तैयार रहना होगा।"

टॉम एक अंग्रेज थे और पहले ब्रिटिश सेना में अफसर थे। उन्हें नौसेना की इंजीनियरिंग में विशेषज्ञता हासिल थी। अब भी उनके चाल-चलन में सैन्य अदब-कायदों की झलक मिल जाती थी। एक दिन टॉम स्वामीजी के सामने खड़े थे, तभी स्वामीजी ने उनसे कहा, "मिस्टर एलेन, हम दोनों एक ही जाति के हैं – क्षत्रिय जाति के।" टॉम ने जब उनसे पूछा कि उन्हें सर्वोत्तम शिष्य कहाँ प्राप्त हुए हैं, तो स्वामीजी ने तत्काल उत्तर दिया, "इंग्लैंड में। अंग्रेजों को पकड़ना कठिन है, परन्तु एक बार यदि वे पकड़ में आ गये, तो फिर वे सदा के लिए अपने हो जाते हैं।"

स्वामीजी जहाँ भी जाते, सर्वदा लोगों की दृष्टि उनकी ओर आकृष्ट हो जाती। उनकी आकृति में एक ऐसी भव्यता थी, जिसे सभी लोग सहज ही पहचान लेते। जब वे मार्केट स्ट्रीट से होकर चलते, तो सभी लोग सम्मानपूर्वक उनके लिये रास्ता छोड़ देते या फिर मुड़कर पूछते, "ये हिन्दू राजा कौन हैं?" इसी वजह से एक बार वे (विशिष्ट व्यक्तियों के लिए निर्धारित) वास्तविक अवतरण-मंच से एक जलयान का अवतरण देख सके थे। टॉम उन दिनों सैन-फ्रांसिस्को के एक बड़े लोहे के कारखाने में काम करते थे। जब स्वामीजी ने जलयान का जलावतरण देखने की इच्छा व्यक्त की, तो उन्होंने एक छोटी-सी टोली को जहाज के कारखाने में आमंत्रित किया था। जहाज-निर्माताओं द्वारा निमंत्रित तथा टिकटधारी कुछ गिने-चुने लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी के लिए भी अवतरण-मंच पर चढ़ना निषिद्ध था और मंच की ओर जानेवाले पुल के प्रवेशद्वार पर दो प्रहरी नियुक्त थे। स्वामीजी ने सोचा कि जलावतरण-मंच से ही जहाज का जलावतरण भलीभाँति देखा जा सकेगा। अत: वे गम्भीरतापूर्वक प्रहरियों के बगल से होकर आगे बढ़ गये। उन लोगों ने इस

पर जरा भी आपत्ति नहीं की। वहाँ से उतर आने के बाद वे बोले, "वह मानो एक शिशु के जन्म लेने के समान था।"

स्वामीजी दृढ़तापूर्वक कहते कि धर्मजगत् के लोग संकीर्ण या कठोर नहीं होते। उन्होंने कहा था, "वे लोग दुबले और उदास चेहरे वाले नहीं, बल्कि मेरे समान मोटे होते हैं।"

कैम्प अर्विंग में मिस बेल के तम्बू में बैठकर बातें करते समय एक बार मिस बेल ने कहा कि यह संसार एक स्कूल है, जहाँ हम अपना पाठ सीखने आते हैं। स्वामीजी ने पूछा, "तुम्हें किसने बताया कि यह संसार एक स्कूल है?"

मिस बेल के मौन रह जाने पर स्वामीजी ने आगे कहा, "यह संसार एक सर्कस है और हम इसमें लुढ़कने के लिये आये हुए जोकर हैं। मिस बेल ने पूछा, "स्वामीजी, हम लुढ़कते क्यों हैं?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "इसलिये कि हम लुढ़कना पसन्द करते हैं। जब हम लुढ़कने से थक जाते हैं, तो इसे छोड़कर चले जाते हैं।"

सैन-फ्रांसिस्को में टॉम तथा एडिथ का एक निवास था, जो स्वामीजी के भाव से ओतप्रोत था। इस देश (अमेरिका) में रहनेवाले रामकृष्ण संघ के सभी संन्यासी सैन-फ्रांसिस्को आने पर उनके यहाँ अवश्य जाते हैं। और उनमें से किसी-किसी ने कहा या लिखा है, "पश्चिम में अन्य किसी से भी अधिक तुम्हीं लोग स्वामीजी को हमारे लिये जीवन्त बनाने में सक्षम हो।" कुछ वर्षों पूर्व मेरी एक मित्र ने अपने पुत्र के साथ एलेन-दम्पति के यहाँ जाने के बाद लौट कर कहा था कि स्वामी विवेकानन्द की उनकी स्मृतियाँ इतनी आनन्दपूर्ण तथा सजीव हैं कि ऐसा लगा मानो स्वयं स्वामीजी ही उस कमरे में उपस्थित हैं। भोजनालय में उनका एक सुन्दर चित्र टँगा था और मेहमान लोग सर्वदा उसके सामने ही बैठते। भोजन के पूर्व मंत्रों की आवृत्ति की जाती और भोजन के दौरान स्वामीजी, उनके गुरुदेव तथा उनके कार्य के अतिरिक्त अन्य किसी भी विषय पर चर्चा नहीं होती। उनके पास स्वामीजी की सारी पुस्तकें थीं और एलेन-दम्पति के पास चित्रों का एक बड़ा संग्रह था, जिसे वे अपने मेहमानों को बड़े आनन्दपूर्वक दिखाया करते थे। उनका सबसे प्रिय चित्र वह था, जो एक उद्यान में लिया गया था। उसमें स्वामीजी घास पर लेटे हुए कुछ मित्रों के साथ बातचीत में मशगूल थे। उसी समय किसी ने आकर एक चित्र लेने की इच्छा व्यक्त की। स्वामीजी उठने को इच्छुक नहीं थे, परन्तु सबके अनुरोध करने पर वे जैसे लेटे थे, वैसे ही बिना पगड़ी तथा पोशाक के, पुष्पित लताओं के सामने खड़े हो गये और ऐसा लगता था मानो कुछ बोलना चाहते हैं और उसी अवस्था में लिया हुआ वह चित्र उनका सर्वोत्तम चित्र था।
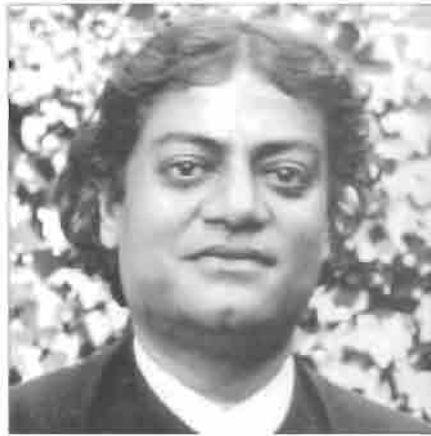
एडिथ का स्वर सुन्दर कोंट्राल्टो (मन्द्रतम) था और कभी-कभी वह बड़े भावपूर्वक स्वामीजी की स्मृतियों से जुड़ी कुछ गीत गाती थी। एक भजन का स्वयं स्वामीजी द्वारा किये हुए अनुवाद के आधार पर बनाया हुआ एक गीत उसे सर्वाधिक प्रिय था। पहली बार अमेरिका आने के पूर्व जब स्वामीजी एक राजा के महल में ठहरे थे, तो वहाँ एक गणिका के मुख से उन्होंने वह भजन सुना था। वहाँ जब स्वामीजी को पता चला वह बालिका गानेवाली है, तो वे उठकर चले गये थे। फिर बाहर से वह भजन सुनकर उसके शब्दों तथा गाने के भाव से इतने विभोर हो गये कि वे लौट आये और उससे बड़ी मधुर बातें कीं और उससे प्राप्त शिक्षा के लिये धन्यवाद भी दिया। इस प्रकार उन्होंने अपने आध्यात्मिकता के अहंकार का अन्तिम कण भी मिटा डाला और पश्चिम में अपने कार्य के लिये जीवन की तैयारी पूरी कर ली।

जिस दिन से स्वामीजी ने एडिथ की सहायता की जरूरत को समझा, तब से वे कभी उसके मन से दूर नहीं हो सके। पिछले पचास वर्षों के दौरान वह अनेकों बार उनके उन शब्दों का स्मरण कर चुकी है, जिन्हें अन्तिम भेंट के समय स्वामीजी ने उसे कहा था, "जब कभी तुम कठिनाई में हो, मुझे पुकारना। मैं जहाँ कहीं भी होऊँगा, उसे सुन लूँगा।" उनके इस वचन से बल पाकर वह जीवन के अनेक झंझावातों का साहसपूर्वक सामना कर चुकी है।

अपने एक व्याख्यान में स्वामीजी ने कहा था, "यदि बुरा समय आता है, तो भी क्या? पेंडुलम घूमकर दूसरी ओर भी जायेगा। परन्तु वह भी कोई अच्छी बात नहीं होगी। पेंडुलम को रोक देना ही उत्तम है।" अमेरिकी बच्चे झूला झूलते समय जब उसे पेंग मारना बन्द करके धीरे-धीरे ठहर जाने देते हैं, तो उसके लिये एक कहावत है, जिसका उपयोग करते हुए स्वामीजी ने कहा, "बूढ़ी बिल्ली को मर जाने दो।"

स्वामीजी को देखना, उनकी वाणी सुनना और उनके शक्तिमय शब्दों का अनुभव करके अपने द्वारा लिपिबद्ध होकर प्रकाशित होना, ताकि अनेक लोग उसे पढ़कर साहस तथा प्रेरणा पा सके, यह एक बड़े दुर्लभ सौभाग्य की बात है और जीवन के सारे कष्टों की भरपाई है। मुझे भी यह कहने को प्रस्तुत कर देता है, "बूढ़ी बिल्ली को मर जाने दो।"

(वेदान्त एंड द वेस्ट, मई-जून १९५४)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर

(८९) सुखद लगत दुःख देय

'ईसप-नीति' के रचयिता वस्तुतः एक गुलाम थे। उनका मालिक एक व्यापारी था। एक बार व्यापार के लिए विदेश जाते समय उसने ऊँटों, खच्चरों तथा गधों के साथ ही गुलामों पर भी वस्त्र, बर्तन, खाद्यान्न तथा अन्य जरूरी चीजें लदवायीं। जहाँ अन्य गुलामों ने हल्की तथा छोटी चीजों को अपनी पीठ पर लदवाया, वहीं ईसप ने खाद्यान्नों का भार उठाना पसन्द किया। ईसप का बोझ सबसे भारी होने के कारण वह सबसे अन्त में धीरे-धीरे चल रहा था। इसे देख दूसरे गुलाम मन-ही-मन हँसते थे। वे स्वयं को धूर्त और चतुर समझते थे, पर बाद में उन्होंने पाया कि चतुर तो ईसप था। पहला पड़ाव आने पर काफिला रुक गया और सभी एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगे। बाद में उन्होंने खाद्यान्न की गठरियों में से कुछ चीजें निकालकर खाईं। काफिला जैसे -जैसे आगे बढ़ता गया, ईसप का भार वैसे-वैसे घटता गया, जबकि दूसरे गुलामों का भार ज्यों-का-त्यों रहा और उन्हें पूरा बोझ वहन करना पड़ा। उन्होंने ईसप से कहा, "हम अपने को चतुर समझते थे, लेकिन वस्तुतः चतुर तो तुम्हीं निकले।"

हमारा मन बड़ा स्वार्थी है और कष्ट झेलने से कतराता रहता है। किसी भी चीज को अंगीकार करते समय हम सुख की कामना करते हैं, परन्तु यह नहीं सोचते कि सुख क्षणिक होता है और बाद में हमें दुःखों का बोझ वहन करना पड़ेगा।

(९०) राम पियारा छोड़कर

सन्त जसवन्त नन्दूरबार के समीपस्थ ग्राम कुकुरमुण्डा के निवासी थे। उनका साहूकारी का व्यवसाय था, लेकिन अपनी कमाई को वे गरीबों को बाँट दिया करते थे। एक बार वे काशी गये। उन दिनों सन्त तुलसीदास एक गुफा में रहते थे। सन्त जसवंत उनसे मिलने गुफा में गये। दोनों की भेंट हुई। जसवंत ने गोस्वामीजी से कहा कि वे अयोध्या-मथुरा की यात्रा पर जा रहे हैं। उनकी इच्छा है कि यात्रा में वे भी उनका साथ दें। गोस्वामीजी बोले कि वे अयोध्या तक जा सकते हैं, मगर मथुरा नहीं। कारण पूछने पर उन्होंने कहा –

मेरा नेम सुनो जसवंता। मेरा मन नहीं कहीं लुभन्ता।
राम बिन दरसूं नहीं कोई। राम बिना स्परसूं नहीं कोई।
फोरूं नयन और जो दरसूं। काटूं कर और जो स्परसूं।

तब जसवंत ने कहा, "यह आपने कैसे समझ लिया कि श्रीराम अयोध्या में ही वास करते हैं, अन्यत्र नहीं। मथुरा भले ही श्रीकृष्ण की कर्मभूमि है, मगर ईश्वर सर्वत्र विराजमान होने के कारण श्रीराम के दर्शन मथुरा में भी हो सकते हैं।" गोस्वामीजी को उनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ। जसवंत के बहुत आग्रह करने पर वे अयोध्या के बाद मथुरा गये। मथुरा में जसवन्त उन्हें श्रीकृष्ण के मन्दिर में ले गये और श्रीराम से तुलसीदास जी को दर्शन देने को कहा। मन्दिर के अन्दर जाने पर तुलसीदास जी को श्रीराम की प्रतिमा दिखाई दी, जबकि वह मन्दिर श्रीकृष्ण-मन्दिर के नाम से परिचित था। तब उन्हें इस बात की प्रतीति हुई कि श्रीराम और श्रीकृष्ण भले ही अलग-अलग हैं, किन्तु दुष्टों के दलन हेतु श्री विष्णु ही अलग-अलग रूपों में इस धरती पर अवतरित हुए हैं। शुद्ध भाव से की गई आराधना तथा दृढ़ निष्ठा के साथ जो भक्त उनका स्मरण करता है, सर्वान्तर्यामी कृपासिन्धु श्रीराम उसे दर्शन देकर उसकी इच्छा-पूर्ति करते हैं।

९१. कबिरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर

दक्षिणी अफ्रीका से भारत लौटने पर गाँधीजी अहमदाबाद गये। धोती-कुरता और पगड़ी ही उनका पहनावा था। उन दिनों अहमदाबाद के मिल-मालिकों और मजदूरों में विवाद हुआ। विवाद इतना प्रबल था कि मजदूरों ने हड़ताल कर दी, फलस्वरूप मिलों पर तालाबन्दी हुई। इससे मिल मालिकों का तो नुकसान हुआ, पर बेरोजगार हो जाने से मजदूरों की भूखों मरने की नौबत आ गई। गाँधीजी को जब इसका पता चला, तो वे उनसे मिलने गये। उनकी हालत उनसे देखी नहीं गई। फटे-पुराने वस्त्रों और अधनंगे बच्चों को देख गाँधीजी का हृदय द्रवित हो उठा। सहसा उनका ध्यान स्वयं की ओर गया तो वे सोचने लगे कि इनके और मेरे वस्त्रों में कितना अन्तर है। जहाँ इन्हें पहनने को वस्त्र नहीं है, वहीं मेरी पगड़ी ही कितनी लम्बी है। वह अकेली ही किसी बच्चे का तन ढँकने में सक्षम है। क्या मेरे लिए इतनी लम्बी पगड़ी पहनना उचित है? तभी उन्होंने निश्चय किया कि आज से पगड़ी पहनना बन्द करुँगा और उसकी जगह टोपी पहनी जाएगी। उन्होंने उस दिन से मिल में बनी खादी की टोपी पहननी शुरू की। यही टोपी गाँधी टोपी कहलाई।

जो स्वधर्म-परायण होता है, वही दीन-हीन श्रमिकों का ख्याल करता है और उनके दुःख-दर्द दूर करने की सोचता है। और जिसका हृदय दूसरों का दुःख दूर करने में सहानुभूति -शील है, वही आत्मोन्नति की ओर अग्रसर होता है।

जीत्यो जी ! टोडरमल वीर

रामेश्वर टांटिया

(लेखक १५ वर्ष की अवस्था में जीवन-संघर्ष के लिये जन्मभूमि त्यागकर कलकत्ता आये। कलकत्ता की एक अंग्रेजी फर्म जे. टॉमस कम्पनी में साधारण हैसियत से काम शुरू किया। बाद में क्रमश: उन्नति करते-करते बम्बई, असम और कोलकाता में विभिन्न उद्योग स्थापित किये। १९५७ ई. में लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और १९६६ ई. तक संसद सदस्य रहे। पाँच बार कांग्रेस पार्टी के कोषाध्यक्ष भी हुए। १९६८-७० ई. में आप कानपुर के मेयर थे आप सुप्रसिद्ध 'ब्रिटिश इण्डिया कॉरपोरेशन' के प्रबन्ध निदेशक भी थे। आपने १९५०, १९६१, १९६४ ई. में तीन बार विदेश-यात्राएँ की। व्यवसायी तथा उद्योगपति होते हुये भी अत्यन्त सहृदय, साहित्यानुरागी तथा समाजसेवी थे। आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की। प्रस्तुत है आपकी 'भूले न भुलाए' पुस्तक के कुछ अंश। – सं.)

लगभग चार-सौ वर्ष पहले की बात है। प्रतापी सम्राट् अकबर का शासन था। उसके मंत्रिमण्डल में नौ ऐसे मंत्री थे, जिन्हें 'नवरत्न' कहा जाता था। उनमें टोडरमल का विशेष आदरपूर्ण स्थान था। वे वित्त और माल जैसे महत्वपूर्ण विभागों को सम्हालते थे। राज्य के काम से उन्हें प्राय: ही पंजाब, सिन्ध और काश्मीर की यात्रायें करनी पड़ती।

आगरा से करीब २०० मील दूर, राजस्थान की सीमा पर नारनौल नाम का एक कस्बा है। वहाँ अग्रवाल समाज का प्रतिष्ठित और धनी परिवार निवास करता था। टोडरमल का इस परिवार के साथ मैत्री-सम्बन्ध था। वे आते-जाते, आराम करने के लिये एक-दो दिन उनके यहाँ ठहर जाते थे।

एक बार दो-तीन वर्ष तक वे नारनौल नहीं आये। इस बीच उस परिवार पर संकट के बादल छा गये। सेठ का असमय ही देहान्त हो गया। जो धन-सम्पत्ति थी, वह मुनीमों की बद-इन्तजामी और बेईमानी से समाप्त हो गई। घर में रह गयी – विधवा सेठानी और पन्द्रह वर्ष का एक किशोर पुत्र।

उन दिनों बहुत छोटी उम्र में ही बच्चों के सगाई-विवाह कर दिये जाते थे। सेठजी के रहते ही, उनके पुत्र की सगाई पास के कस्बे में एक सम्पन्न स्वजातीय घराने में हो गई थी। लड़का अब विवाह के योग्य हो गया। लड़की वाले उनकी नाजुक हालत को जान चुके थे, परन्तु उन दिनों बिना किसी पर्याप्त कारण के सम्बन्ध नहीं छोड़े जाते थे। कभी-कभी तो सम्बन्ध टूट जाने पर भी, वर-पक्ष के लोग अपने भाई-बन्धु तथा मित्रों के साथ हथियारों से सुज्जित होकर बारात ले जाते और युद्ध में जीतकर बहू को ले आते।

कन्या-पक्षवालों ने सुपारियों की एक 'कोथली' (थैली) नारनौल भेजी और लिखा कि विवाह का लग्न फाल्गुन माह में निकला है। अपने और हमारे घराने की इज्जत का ध्यान रखते हुये आप, कम-से-कम इन सुपारियों की संख्या के बराबर बाराती अवश्य लायें। हमारे यहाँ, हमेशा ही, वर हाथी के हौदे पर सवार होकर प्रवेश करता है, इसलिये कम-से-कम दो-एक हाथियों का भी बारात में होना जरूरी है।

सेठानी बहुत समझदार महिला थी, वह उन लोगों की चालाकी समझ गई। सैकड़ों व्यक्तियों की बारात के लिये उसी अनुपात में रथ, घोड़े और ऊँट भी होने चाहिये। आने-जाने के समय उन सबके लिये भोजन और पशुओं के लिये दाने-चारे की व्यवस्था भी होनी चाहिये। इतना सब, अब उनके वश की बात नहीं थी। परिवार के स्वजन और मित्रों से सलाह की गयी, परन्तु कोई उपाय नजर नहीं आया।

पिछले कई दिनों से वे इसी चिन्ता में थीं कि अचानक पंजाब जाते हुये टोडरमल उनके यहाँ ठहरे। उन दिनों उत्तर-भारत में पर्दा-प्रथा का, कड़ाई से पालन किया जाता था। परन्तु सेठानी उनकी मुँहबोली बहन थी, इसलिये उनसे बोलती थी और पर्दा नहीं करती थीं। टोडरमल ने महसूस किया कि बहन बहुत उदास है। कारण पूछने पर वह बोल नहीं पाई और केवल सुबक-सुबक कर रोने लगी। थोड़ी देर बाद आश्वस्त होने के बाद उन्होंने बताया कि लड़कीवाले बहुत धनाढ्य हैं, वे अब सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं।

सारी बातें सुनकर टोडरमल ने कहा – "आप बिल्कुल भी चिन्ता मत कीजिये, जो कुछ जवाब देना होगा, आपकी तरफ से मैं भिजवा दूँगा।" कुछ दिनों बाद, एक सन्देश-वाहक मूँगों से भरी हुई एक 'कोथली' (थैली) लिये कन्या-पक्ष वालों के यहाँ जा पहुँचा। पत्र में यथायोग्य के बाद लिखा था – "विवाह की तिथि हमें मंजूर है। परन्तु आप की और हमारी इज्जत का ख्याल करके, हम इतने बाराती लाना चाहते हैं, जितने मूँग इस कोथली में है। स्वर्गीय सेठजी का जयपुर से लेकर आगरा तक बहुत लोगों से स्नेह-सम्पर्क था। भला, इकलौते-पुत्र के विवाहोत्सव पर उन सबको हम कैसे भूल सकते हैं? आप खातिर जमा रखें, बारात में बड़े-से-बड़े लोग आयेंगे। हम लोग बारात लेकर अमुक दिन पहुँच रहे हैं, आप सारी तैयारी रखियेगा।"

पत्र पढ़कर, उन लोगों ने मूँग के दाने गिने, तो उनकी संख्या करीब दो हजार निकली। वे मन-ही-मन हँस रहे थे कि सेठानी शायद अधिक दुख से विक्षिप्त हो गयी हैं। इतने

बारातियों के लिये जितने हाथी-घोड़े, ऊँट और रथ चाहिये उनकी व्यवस्था तो शायद नगर-सेठ भी नहीं कर सकेगा। रास्ते में उन सबके खाने-पीने और आराम के लिये भी लाखों रुपये चाहिये। खैर, उन्होंने कासिद के हाथों उत्तर दिया – "हमें आप की बात मंजूर है। बारातियों की खातिर तबज्जो के लिये आप बेफिक्र रहें, हम शुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं।"

इधर टोडरमल ने आगरा आकर, अपने मित्रों और साथियों से सलाह की। बादशाह से भी अर्ज किया – "हुजूर ! मेरे भानजे की बारात जायेगी, इसलिये शाही दरबार से पचास हाथी, पाँच सौ घोड़े तथा ऊँट और एक हजार रथ चाहिये। उस मौके पर शाही बाजे और तोपों को भी बारात के साथ जाने की इज्जत बख्शी जाये।"

बड़े-बड़े राजे-रईस, सरदार और आला-अफसरों को बारात के लिये न्यौता दिया गया। रास्ते में, भोजन आदि की व्यवस्था के लिये सरंजाम के साथ पहले से ही सैकड़ों आदमियों को भेज दिया गया। नारनौल पहुँचकर राजा टोडरमल ने लाखों रुपयों का भात भरा। बहन (वर की माता) के लिये मोतियों-जड़ी 'चूनड़' और वर-वधू के लिये कीमती गहनों-कपड़ों का अम्बार लगा दिया। वर-पक्ष के लोगों के लिये यथायोग्य भेंट और सिरोपाव में भी कहीं कोई कसर नहीं थी।

सारे कस्बे में चर्चा फैल गई कि सेठजी के यहाँ नरसी मेहता के मुनीम, साँवरिया सेठ जैसा भात आया है।

नारनौल से जो बारात रवाना हुई, वैसी इसके पहले देखी-सुनी नहीं गई थी। घोड़े, ऊँट, रथ, पालकी और सुखपालों की लम्बी कतार, मीलों तक जा रही थी। करीब दो हजार तो बाराती ही थे और उनके साथ एक हजार नौकर, सईस, महावत और रसोइये आदि भी थे। इनके सिवा बाजे-वाले, गानेवाले, और नर्तकियों की भी बड़ी तादात थी।

कन्या-पक्ष के लोगों ने जब सुना कि बारात में जयपुर के महाराज मानसिंह, दिल्ली के अर्थमंत्री टोडरमल, प्रधानमंत्री अब्दुल रहीम खानखाना और सेनापति राजा बीरबल जैसे हाजिर-जवाब व्यक्ति आदि देश के बड़े-से-बड़े लोग आ रहे है और साथ में हाथी, घोड़ों, रथ और ऊँटों का एक बड़ा काफिला भी है, तो वे लोग घबरा गये। यद्यपि वे नगर-सेठ थे, करोड़पति थे, फिर भी, इतनी बड़ी बारात की व्यवस्था करना उनके वश की बात नहीं थी।

आगवानी के लिये कन्या का पिता कुछ प्रतिष्ठित लोगों को साथ लेकर गया और टोडरमल के पैरों में पगड़ी रखकर कहने लगा – "हमने अपनी तरफ से बहुत भूल की जो बहाना बनाकर सम्बन्ध तोड़ने का प्रयास किया, परन्तु अब हमारी इज्जत आपके हाथों में है। इतनी बड़ी बारात ठहराने के लिये न तो हमारे गाँव में कोई स्थान है और न हम इन सबके लिये भोजन और चारे-पानी की व्यवस्था ही कर सकते हैं। सैकड़ों वर्षों से हमारे परिवार को नगर-सेठ की पदवी मिली हुई है, आपकी दया के आस-पास के गाँवों में काफी इज्जत भी है, परन्तु जहाँ एक ओर हमारे अनेक स्वजन-मित्र हैं, वहीं ईर्ष्यालु शत्रुओं की संख्या भी कम नहीं है। इन्हें हमारी बेइज्जती से जग-हँसाई करने का मौका मिल जायेगा। कन्यादान, मेरे परिवार का मेरा भाई कर देगा। मैं जिल्लत और बेइज्जती देखने के पहले ही सदा के लिये गाँव छोड़कर चला जाना चाहता हूँ।"

राजा टोडरमल ने उसे उठाकर गले से लगाते हुये कहा – "जो कुछ हुआ, उसे भूल जाइये। अब तो आप हमारे सम्बन्धी है। आपकी मान-बड़ाई में ही हमारी भी शोभा है। आप बिल्कुल भी चिन्ता न करें; किसी को भी पता नहीं चलेगा। सारी व्यवस्था हम लोगों की तरफ से है। आप केवल ढुकाव के समय शर्बत और पान से बारातियों की अच्छी तरह खातिरदारी कर दीजियेगा।"

बारात की सजावट और आतिशबाजी देखने के लिये आसपास के गाँवों से हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे आये थे। उन सबके लिये यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। मोतियों की झूल पहने हाथी और घोड़े झूम रहे थे। चार-पाँच तरह के शाही-बाजे बज रहे थे। आगरा की प्रसिद्ध नर्तकियों का नाच-गाना हो रहा था और तरह-तरह की रोशनी से आसमान चमक रहा था। विवाह के सारे रस्म आनन्दपूर्वक पूरे हुए। वधू को विदा करके जब वे नारनौल पहुँचे और द्वाराचार हुआ तो वर-पक्ष की महिलाओं ने जो गीत गाया, वह था –

अै तो जीत्या जी ! जीत्या, म्हारा टोडरमल वीर;
केसरियो बनड़ो जीत्यो म्हारै बीरैजी री पाणँ।

आज उस बात को चार-सौ वर्ष हो गये, परन्तु अभी तक बहू की अगवानी के समय राजस्थान में उस उदारमना भाई टोडरमल की पुण्य-स्मृति में यही गीत गाया जाता है। ❖

नया प्रकाशन संग्रहणीय पुस्तिका

वेदान्त-बोधक कथाएँ

स्वामी अमरानन्द

(वेदान्त के गूढ़ तत्त्वों का बोध करानेवाली २० कथाओं का संकलन)

पृष्ठ संख्या – ७१ (१२ चित्रों सहित)
मूल्य – रु. ३०/– (डाक-व्यय अलग)

लिखें - अद्वैत आश्रम,
५ दिही एण्टाली रोड,
कोलकाता ७०० ०१४

****

माँ की स्मृति

मोहिनी मोहन मुखोपाध्याय

(माँ श्री सारदा देवी की मधुर-पावन स्मृतियों का बँगला से अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। – सं.)

१९०९ या १९१० में मैंने कोलकाता के बागबाजार वाले मकान में जाकर पहली बार माँ का दर्शन किया था। उस समय मेरी आयु बारह वर्ष थी और मैं कोलकाता से बारह मील दूर स्थित एक गाँव के एक प्राइमरी स्कूल का छात्र था। माँ के दीक्षित एक शिष्य के साथ एक शनिवार की शाम को मैं बागबाजार के 'माँ के घर' गया। माँ के ये शिष्य प्राय: ही हमारे गाँव में आकर रामकृष्ण मिशन के आदर्शों का प्रचार किया करते थे। माँ को साष्टांग प्रणाम करते समय मेरे पूरे मन में एक तरह का भय समाया हुआ था। माँ घूंघट काढ़े अपने दोनों श्रीचरण नीचे लटकाये चारपाई पर बैठी थीं। उनके एक ओर एक वयस्क महिला खड़ी थीं। माँ के चरणों से अपना मस्तक स्पर्श कराते हुए प्रणाम करने के बाद सिर उठाकर मैंने देखा कि उन्होंने घूंघट को थोड़ा-सा खिसकाया और मेरी ओर देखकर धीरे से हँसी। मैंने अनुभव किया कि उनकी यह हँसी जागतिक नहीं है। उनके साथ मेरी कोई बातचीत नहीं हुई। इसके बाद उनके कमरे से निकलकर मैं नीचे उतर आया। माँ की वह कुछ क्षणों की स्नेहदृष्टि ने मेरे मन को ऐसा अभिभूत कर लिया था कि अब भी वह स्मृति मेरे मन में सजीव बनी हुई है।

घर लौटने के बाद मेरे मन में माँ को फिर देखने की तीव्र इच्छा हुई। कुछ महीनों बाद पुन: दर्शन का मौका मिला। उस बार वैसे उन्होंने मेरे स्वास्थ्य और पढ़ाई-लिखाई के बारे में दो-एक बातें पूछा था; पर मैंने भलीभाँति अनुभव किया कि उनके प्रति मेरा आकर्षण क्रमश: बढ़ रहा है और मेरे प्रति उनका नीरव गहन स्नेह ही इसका मूल कारण है।

दो-तीन वर्ष बीत गये। इस बीच मैं कई बार माँ के दर्शन कर चुका था। १९१२ ई. के ग्रीष्मकाल में एक शनिवार की शाम को मैं माँ के पास गया। उन्हें साष्टांग प्रणाम करने के बाद मैंने उनके समक्ष अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की। उनके दर्शन के बाद नीचे उतरकर आने पर मेरे एक परिचित श्रद्धेय व्यक्ति से भेंट हुई। उन्होंने मुझसे उस रात अपने मकान में ठहरने को कहा। इसके बाद हम दोनों माँ के एक सेवक स्वामी धीरानन्द के साथ पास ही गंगा के किनारे टहलने गये। वहाँ गंगा के ढलान के पास घास पर बैठकर हम लोग बेलूड़ मठ, चरित्र-गठन आदि विभिन्न विषयों पर काफी देर तक चर्चा करते रहे। स्वामी धीरानन्द मेरी ओर विशेष ध्यान देते हुए बिल्कुल अपने आदमी जैसे बातें कर रहे थे। मेरे मन में कई बार यह बात उठी कि माँ से दीक्षा लेने की व्यवस्था करने के लिये उनसे अनुरोध करूँ, लेकिन कह नहीं सका। गाँव लौटकर मैंने एक पत्र लिखकर उनसे अनुरोध किया कि अगले रविवार को मुझे दीक्षा ग्रहण करने में वे सहायता करें। छह-सात दिन बाद उनका उत्तर आया – माँ दया करके दीक्षा देने को राजी हो गयी हैं और दिन-काल उन्होंने स्वयं ही निर्धारित कर दिया है। मैं उसी के अनुसार बागबाजार पहुँचा। वहाँ मैंने वह पत्र उन सज्जन को दिखाया, जिनसे पिछली बार उद्बोधन में भेंट हुई थी। उन पर विश्वास करके मैंने केवल उन्हीं को उस पत्र की बात बतायी थी। पत्र देखकर वे बड़े खुश हुये और बोले कि मेरा पत्र पाने के बाद कृष्णलाल महाराज (धीरानन्दजी) ने उनसे मेरे स्वभाव-चरित्र के बारे में पूछा था। उन्होंने मुझे कुछ अच्छे महत्त्वपूर्ण निर्देश दिये और बोले कि मैं परम सौभाग्यवान हूँ, क्योंकि इतनी कम आयु में माँ की कृपा पा रहा हूँ। इस बात की मुझे उस समय धारणा नहीं के बराबर थी कि मैं साक्षात् जगदम्बा से दीक्षा ग्रहण करने जा रहा हूँ। मैं तो केवल इतना ही अनुभव कर रहा था कि वे मेरी अपनी माँ हैं और गुरु के रूप में बाकी जीवन वे ही मेरी रक्षा करेंगी। यह धारणा बीच-बीच में मेरे मन में उथल-पुथल मचाने लगी और मुझे अपने हृदय में स्पष्ट बोध हुआ कि मुझे जो प्राप्त होने वाला है, उससे बढ़कर अन्य किसी प्राप्ति की आकांक्षा मनुष्य जीवन में नहीं हो सकती।

निर्धारित दिन निर्दिष्ट समय पर मैं बागबाजार 'माँ के घर' गया। माँ पूजा समाप्त कर मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं। उनके कमरे में प्रवेश करते समय मुझे बड़ा भय लग रहा था। पर उनके सामने जाने पर मन में कोई भय नहीं रहा। जैसे घर में अपनी माँ से बातें करता था, वैसे ही मैं उनके साथ बातें करने लगा। स्वामी धीरानन्द की परम करुणा तथा स्नेहपूर्ण सहायता से उस दिन सबसे पहले मेरी ही दीक्षा हुई। जब माँ ने मुझे अपनी बाँयी ओर के आसन पर बैठने को कहा, तब मैंने ध्यानपूर्वक अपनी आँखों से देखा – वे अब पहले जैसी मनुष्य नहीं हैं। एक अलौकिक ज्योति ने उन्हें घेर रखा है

और उनके मुखमण्डल से वही माधुर्य, वही दिव्य आनन्द, वही गम्भीर करुणा फूट रही है – जो उनके लिये स्वाभाविक है, पर इसके पूर्व मेरी दृष्टि से ओझल थी। इसके बाद दो-एक बार उन्होंने मेरे सिर से पीठ तक हाथ फेर दिया और बोलीं, "जाओ बेटा, जाओ ! ओह, इतने छोटे हो तुम !" सम्भवत: इस उक्ति के माध्यम से उन्होंने करुणापूर्वक मुझे समझाना चाहा था कि इस दु:ख-कष्टमय धरती पर मुझे बहुत दिनों तक रहना होगा और मेरे भाग्य में काफी दु:ख-कष्ट लिखे हैं। अपने उन शुभचिन्तक सज्जन की सलाह पर गुरु-दक्षिणा के रूप में मैं अपने साथ चाँदी का एक रुपया ले गया था। माँ को प्रणाम करके जब मैं उन्हें रुपया देने लगा, तो वे बोल उठीं, "नहीं, नहीं, तुम्हें रुपया नहीं देना होगा। तुम्हें रुपया कहाँ से मिलेगा बेटा? अभी तो तुम स्कूल के छात्र हो और तुम्हारी उम्र इतनी कम है ! तुम यह हरीतकी लो (यह कहकर उन्होंने मेरे हाथ में एक हरीतकी रख दिया) और वही मुझे दे दो।" मैंने अभिमान के स्वर में कहा, "नहीं माँ, आपको यह रुपया लेना ही होगा। यह रुपया मैंने अपने जेब-खर्च से एकत्र किया है।" तभी स्वामी धीरानन्द द्वार खोलकर कमरे में आये। इतनी देर से वे कमरे के बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे और शायद उन्होंने हमारी बातचीत सुन ली थी। उन्होंने आँख से इशारा करके मुझे हरीतकी के साथ वह रुपया माँ के सामने रखने को कहा। मैंने तत्काल वैसा ही किया। माँ द्वारा धीरानन्दजी के हाथ में वह रुपया रखते ही वे मुझसे बोले, "यह रुपया ठाकुर की पूजा में खर्च होगा।" यह सुनकर माँ मुस्कुरायीं। फिर गंगाजल से हाथ धोने के बाद माँ कुछ देर चुप रहीं और उसके बाद कृष्णलाल महाराज से मुझे कुछ प्रसाद देने को कहा। माँ के श्रीचरणों पर सिर रखकर प्रणाम करके मैं बाहर आया। माँ के कमरे के सामने छोटे बरामदे के द्वार से कुछ दूर खड़े होकर मैंने प्रसाद खाया। देखा – कृष्णलाल महाराज अन्य दीक्षार्थियों को एक-एक कर दीक्षा के लिये ठाकुर के कमरे में ले जा रहे हैं।

माँ के पास मैं करीब पन्द्रह मिनट था। जब बाहर आया, तो ऐसा लगा मानो मैं आनन्द-सागर में तैर रहा हूँ। दीक्षा के बाद पूजागृह से निकलने के पूर्व माँ ने मुझसे कहा था कि घर लौटने के पहले मैं दोपहर का प्रसाद लेना न भूलूँ। अत: मैं नीचे के छोटे कमरे में बैठा प्रतीक्षा करने लगा। तभी बलराम बाबू के पुत्र रामकृष्ण बाबू वहाँ आये। मेरी दीक्षा की बात सुनकर उन्होंने बड़े स्नेहपूर्वक मुझे गले से लगा लिया और बोले कि कुछ वर्षों बाद मुझे रामकृष्ण संघ में प्रवेश लेते देखकर वे परम आनन्दित होंगे। लेकिन हाय ! ऐसा नहीं होना था। माँ ने मेरे भाग्य में दूसरा ही मार्ग लिख रखा था।

दोपहर के एक बजे मुझे प्रसाद के लिये बुलाया गया। जिस कमरे में प्रसाद पाने गया, वह लोगों से भरा हुआ था। मुझे स्वामी सारदानन्द, स्वामी धीरानन्द, रामकृष्ण बाबू और अन्य गणमान्य लोगों के साथ बैठकर प्रसाद पाने का सौभाग्य मिला। हमारे आसन ग्रहण करने के बाद पुन: माँ का दर्शन मिला। कमरे के द्वार पर आकर उन्होंने कुछ प्रसाद अपने हाथ से एक विधवा महिला के हाथ में दिया और मेरी ओर दिखाकर बोलीं, "यह उस छोटे लड़के को दे दो।" इस घटना से वहाँ उपस्थित हर व्यक्ति, यहाँ तक कि सारदानन्द जी भी मेरी और देखकर धीरे से हँसे। मैं थोड़ा झेंप गया।

माँ ने दीक्षा के समय बता दिया था कि ध्यान किस प्रकार करना होगा, तो मैंने पूछा, "माँ, आपका ध्यान किस प्रकार करूँगा?" उन्होंने उत्तर दिया, "तुम्हें वैसा कुछ नहीं करना होगा। तुम्हारे इष्ट के ध्यान से ही सब होगा। उनकी स्वयं को लोगों की दृष्टि से छुपाकर रखने की असंख्य घटनाओं में से उदाहरणार्थ मैंने यहाँ इस एक घटना का उल्लेख किया।

उस दिन शाम को 'माँ के घर' से लौटने के पूर्व उनका फिर दर्शन मिला। मैंने पूछा, "माँ, आपने कहा है, मंत्र का सुबह-शाम १०८ बार जप करना होगा। इसके अलावे अन्य समय भी जितना कर सकते हो करना। तो क्या मैं किसी भी जगह जप कर सकता हूँ?" माँ बोलीं, "हाँ बेटा, तुम्हारी जहाँ खुशी, कर सकते हो।" मैंने फिर उनसे पूछा, "खाने के समय या किसी अपवित्र स्थान में भी क्या जप कर सकता हूँ?" माँ खूब जोर देकर बोली, "हाँ, हाँ, अपवित्र स्थान में भी कर सकते हो। इन बातों को लेकर तुम्हें चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है, बेटा।" उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा और नेत्र बन्द कर कुछ देर चुप रहीं। इसके बाद उन्होंने मेरी ठुड्डी को छुकर मुझे स्नेह किया। मेरे विदा लेते समय वे बोलीं, "फिर आना, बेटा।" बात साधारण-सी थी और साधारण ढंग से ही कही गयी थी। अन्य किसी के लिये इस बात का प्रभाव शायद सामान्य-सा होता, पर मेरे लिये तो वह सभी प्रेरणाओं का केन्द्र बन गया। जीवन के कठिन उतार-चढ़ावों के बीच यह उक्ति मुझे सदा उत्साहित रखती है। उन्होंने मुझे जो आश्वासन दिया, वह मेरे लिये परम निश्चिन्तता तथा विपुल साहस का स्रोत है। जब-जब किसी कारणवश मैंने निराशा या दुर्बलता का बोध किया या किसी भयंकर विपत्ति या किसी कठिन परिस्थिति में पड़ा, तब-तब माँ की इस उक्ति ने मेरे लिये संजीवनी का काम किया है। मेरी इन साधारण-सी स्मृतियों से यह बात स्पष्ट है कि उनके असीम स्नेह ने मेरे जैसे अनेक लोगों को सदा के लिये उनके पद-कमलों से बाँध लिया है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, पवित्रता, निष्ठा, आन्तरिक भक्ति और अभीष्ट लाभ की तीव्र इच्छा – ये ही गुण माँ को सर्वाधिक सन्तुष्ट करते थे।* ❖

* उद्बोधन वर्ष ९८, अंक १, पृ. ३२-३४; Prabuddha Bharata, February 1955, pp. 73-75

दैवी सम्पदाएँ (२०) अचापलम्

भैरवदत्त उपाध्याय

(गीता में आसुरी गुणों के साथ ही दैवी गुणों का भी निरूपण किया गया है। विद्वान् लेखक ने इस लेखमाला में दैवी गुणों का सविस्तार विश्लेषण किया है और विभिन्न शास्त्रों व आचार्यों के विचारों के आधार पर बताया है कि इन्हें अपने जीवन में कैसे लाया जाय। – सं.)

'अचापलम्' अर्थात् चपलता या चंचलता का अभाव बीसवी दैवी-सम्पत्ति है। श्रीधरी टीका में बेकार की क्रियाओं का अभाव अचापल कहा है – **अचापलं व्यर्थ-क्रिया-राहित्यम्।** आचार्य शंकर के अनुसार बिना किसी प्रयोजन के वाणी, हाथ, पैर, आदि का संचालन चपलता और उसे न करना 'अचापलता' है – **असति प्रयोजने वाक्पाणि-पादादीनाम् अव्यापारयित्वम्।** 'रस-तंरगिणी' में एक साथ अनेक क्रियाओं का निष्पादन अथवा उनकी शीघ्रता को चपलता लक्षित किया है – **इतरेतर-क्रिया-करणं क्रियाया: शीघ्रता वा चपलता।**'[1] महाभारत में धर्मरूप यक्ष ने अचपलता को अपना देह बताया है[2] और मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के प्रमुख लक्षणों में परिगणित होने का उल्लेख किया है।[3] कुछ लोगों का स्वभाव होता है कि वे बैठे-बैठे पैर हिलाते हैं, दाँतों से नाखून काटते हैं, नाखून से जमीन कुरेदते है; आँखों, मुँह और भोहों को चढ़ाते हैं। थोड़े समय भी एक स्थान पर नहीं बैठ पाते। बातूनी और बतकट होते हैं। थूकना, अपशब्दों का प्रयोग, आवेश, क्रोध तथा परिहास का प्रदर्शन उनका गुण होता है। अविलम्ब घबरा जाना, लाभ एवं जय की स्थितियों में हर्षित होना और दु:खद क्षणों में अत्यन्त दु:खी होना, क्षण में हास, और क्षण में रुदन, क्षण में तुष्ट और क्षण में रुष्ट होना उनके लिये सहज तथा सरल है। चंचलता का यही गुण है। मन, वाणी और इन्द्रियों के उद्वेगों से वे अस्थिर होते है। वे एक साथ अनेक कार्य आरम्भ कर देते हैं। किसी भी काम को बहुत शीघ्रता से निपटाना चाहते हैं और एक काम को बीच में ही छोड़कर दूसरा शुरू कर देते हैं या फिर ऐसे कामों में जुट जाते हैं, जो निरुद्देश्य, अनावश्यक, हानिप्रद और खतरनाक होते हैं। ऐसे लोगों की बुद्धि भी चंचल होती है। उनमें स्थितप्रज्ञता का अभाव होता है। वे देश, समाज और परिवार का हित तो क्या, अपना भी भला नहीं कर पाते? जब वे अपने ही नहीं होते, तो दूसरों के क्या होंगे? इसलिये उनके समस्त कार्य सुनिश्चित रूप से चौपट हो जाते हैं –
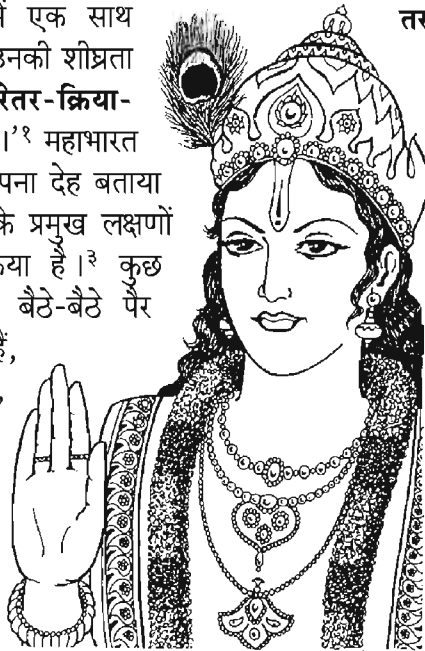
आत्मनश्चपलो नास्ति कुतोऽन्येषां भविष्याति।
तस्मात् सर्वाणि कार्यणि चपलो हन्त्यसंशयम्॥

चपल सुख में दु:ख-बुद्धि और दु:ख में सुख-बुद्धि कर लेता है। उसकी गति 'पंचतंत्र' के उस बन्दर की भाँति होती है, जो बिना मतलब लकड़ी में लगी कील को उखाड़ता है और परिणाम-स्वरूप मर जाता है। अव्यापार में व्यापार करने का परिणाम यही है –

अव्यापारेषु व्यापार:
यो नर: कर्तुमिच्छति।
स एव निधनं याति
कीलोत्पाटीव वानर:॥

लोगों में चपलता क्यों होती है? इन्द्रियाँ स्वभावत: चपल हैं। उन्हें स्वतंत्र और अनियंत्रित छोड़ दिया जाता है। उन्मुक्त भोगों के उपभोग की छूट दी जाती है। असंयमित मन इन्द्रियों का अनुगामी होकर इन्द्रिय-सुख की अनुभूति करता है। मन की लगाम थामनेवाली बुद्धि भी अपने विवेक को खोकर मन की वशवर्तिनी बन जाती है। इस प्रकार जब बुद्धि मन में, मन इन्द्रियों में और इन्द्रियाँ विषयों में रम जाती है, तब चंचलता अपनी चरण सीमा पर होती है। इसका उपचार असम्भव नहीं, तो भी कठिन अवश्य होता है। यह उसी प्रकार है, जैसे कोई व्यक्ति प्रथम तो चपल ग्रहों से पीड़ित हो, फिर उसे वात विकार हो जाय, तदनन्तर उसे बिच्छू काट ले, तत्पश्चात् उसे शराब पिला दी जाय, तब क्या वह एक पल के लिये भी स्थिर रह सकता है? क्या उसकी अस्थिरता का कोई उपचार होगा –

ग्रह-ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
तेहि पिआइअ बारुनी कहुहु काह उपचार॥

भोगैषणा और लोकैषणा से मन तथा बुद्धि विचलित हो जाती है। उन्हें महत्त्वाकांक्षाएँ परिचालित करती हैं। फलत: अनेकानेक क्रियाएँ होती है। हमारे मन में अनेक आकांक्षाएँ

---

१. 'मंजूषा' – डॉ. विश्वनाथ मित्र

२. यश: सत्यं दम: शौचमार्जवं ह्रीरचापलम्।
दानं तपो ब्रह्मचर्यमित्येतास्तनवो मम॥ (शान्ति-पर्व)

३. अद्रोह: सत्यवचनं संविभागो दया दम:।
प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलम्।
एवं धर्म प्रधानेष्टं मनु: स्वायम्भुवोऽब्रबीत्॥ (वही २१.१२)

अभिलाषाएँ तथा इच्छाएँ उठती है। हम वैज्ञानिक, प्राध्यापक, कवि, डॉक्टर, समाजसेवी, उद्योगपति, विद्वान्, नेता, अभिनेता, खिलाड़ी – सब एक साथ बनना चाहते हैं। कोठी, कार, सुन्दर व सुशील पत्नी, स्वस्थ पति, उच्च पद, मान-यश और अतुल धन के स्वामी बनना चाहते हैं। इन्हें पाने का शार्टकट मार्ग अपनाते हैं और एक साथ अनेक काम हाथ में ले लेते हैं, भले ही उन्हें पूर्ण करने शक्ति, साधना और साधन हमारे पास न हों। साधनों का आकलन तथा विधिवत् कार्ययोजना नहीं बनाई जाती। लक्ष्यों का निर्धारण भी साधनों के अनुकूल नहीं होता। प्राय: दूरगामी लक्ष्यों की प्राप्ति न होने पर विफलता से हताशा मिलती है, जिससे चित्त की उद्विग्नता बढ़ जाती है और चंचलता कम नहीं होती।

संकल्प का अभाव, निर्णायक का तिरोभाव, उपयुक्त विकल्प के चयन के विवेक की न्यूनता, परिणाम के विचार की दृष्टि का विलोप और कामनाओं का ज्वार आदि ऐसे कारण हैं, जिनसे व्यक्ति अनावश्यक तथा इतरेतर क्रियाएँ करता रहता है। जो लोग हिंसा असत्य, मोह, ईर्ष्या, भय और असन्तोष से ग्रसित हैं, वे कभी स्थिर नहीं रह सकते। जिनका अन्त:करण शुद्ध नहीं है; ज्ञान, कर्म तथा भक्ति की त्रिवेणी के पवित्र जलकण ने जिनके हृदय का स्पर्श नहीं किया है; आत्मनिग्रह, लोकार्पित कर्म, तप, स्वाध्याय, सरलता, अपिशुनता, अपरिग्रह आदि दैवी-सम्पदाओं के आचरण का प्रयास जो नहीं करते; उनमें अचपलता जैसे महनीय गुण का आधान असम्भव है। 'गीता' में हम देखते हैं कि अर्जुन आरम्भ में बड़ी चपलता प्रदर्शित करते हैं। पहले तो रथ में बैठकर लड़ने के लिये युद्धक्षेत्र में जाते हैं, किन्तु चपलता के कारण बाद में हथियार डाल देते हैं और ज्ञानियों की भाँति वहीं पर निर्बोधपूर्ण प्रवचन करने लगते हैं। इस पर श्रीकृष्ण उन्हें फटकारते हैं – "अर्जुन, तेरा यह सम्पूर्ण कथन प्रज्ञावाद तथा अवाच्यवाद है, चपलता है, जो आसुरी गुण है,[४] इसे छोड़ और पहले अपनी बुद्धि को निश्चयात्मक तथा वस्तुपरक (Objective) बना। जिनकी बुद्धि अनिश्चयात्मक, आत्मनिष्ठ (Subjective) और भोगों में आसक्त होती है, वे अनेकानेक भ्रमात्मक तथा अन्तहीन दिशाओं में सोचते हैं,[५] और लक्ष्य से भटक जाते हैं। कोई ठोस कदम नहीं उठा पाते।"

जिस प्रकार महानदियों की प्रबल धारा को रोकना अत्यन्त कठिन है; उसी प्रकार मन, वाणी, काम, क्रोध, तृष्णा और भूख-प्यास आदि आवेगों पर भी विजय पाना दुस्तर है। चपलता इन्हीं आवेगों से उद्भूत है। मन तो चंचल है ही, वाणी की चपलता के कारण भी जीवन में कम कलह नहीं होते। तोले भर की जीभ हर समय कतरनी-सी चलती है। जिससे आये दिन शीत-युद्ध और महाभारत होते हैं। काम की काली छाया ने तो हमारे जीवन को इतना आच्छादित कर रखा है, काम-सर्पिणी ने ऐसा घेरा बनाया है कि हम उससे बाहर जा ही नहीं पाते। इसीलिये फ्रायड महाशय ने मनुष्य को मात्र एक कामुक पशु होने का प्रमाण-पत्र जारी किया है। उन्होंने मनुष्य की प्रत्येक अनावश्यक क्रिया को अवदमित इच्छाओं और काम-कुण्ठा की अभिव्यक्ति माना है। क्रोध आदि मनोविकारों और शरीर की भौतिक आवश्यकताओं की अग्नि-शिखाओं पर मानव-पतंगा परवान चढ़ता है और जीवन भर अस्थिर रहता है। उसकी स्थिति मरीचिका में फँसे अथवा कस्तूरी के मृग के समान अत्यन्त दयनीय होती है। अचपलता का अर्थ सरोवर के जल की स्थिरता नहीं है। उसका आशय पर्वत की भाँति अगतिशीलता नहीं है। प्रमाद, आलस्य, अकुशलता, मन्दता और दीर्घसूत्रता उसके पर्याय नहीं है। उसका तात्पर्य तो ऐसी गतिशीलता से है, जो मैदानी नदी, समतल में प्रवहमान निर्झर और हरी घास पर दौड़ते मृगछौने में होती है। यह अगति में गति है। निरन्तर चलनेवाला कच्छप उसका प्रतीक हो सकता है, जो एक ही छलाँग में लक्ष्य तक पहुँचने का दम भरनेवाले खरगोश से बाजी मार लेता है। यह कोई पाषाण प्रतिमा नहीं है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिये किसी मन्दिर की आवश्यकता पड़े, अपितु यह तो वह जीवन्त मूर्ति है, जो अचेतन में भी चेतना का संचार करती है, किन्तु वह कभी स्वयं भगवान बनकर 'शक्ति-सम्पात' करने अथवा मुँह से शिवलिंग का गोला निकलने की सिद्धियों का चमत्कार नहीं दिखाती। यह बटोही का अखण्ड, अनवरत, मौन, एकाकी, धैर्य, साहस, संकल्प और विवेक से परिपूर्ण यात्रा है, जिसका लक्ष्य श्रान्त तथा परिक्लान्त होकर कभी किसी विश्रामगृह में विश्राम करना नहीं है। यह एक वैयक्तिक और सामाजिक मूल्य है, जिसके बिना व्यक्ति तथा समाज के सम्पूर्ण विकास की सम्पूर्ण परिकल्पना सर्वथा अपूर्ण है।

गीता में कहा है कि नियत अर्थात् पूर्व में सुविचारित तथा सुनिश्चित कर्म करो (३.८)। जिस कार्य को हाथ में लिया गया है, उसे पूरा करना है। उसे तब तक नहीं छोड़ना है, जब तक कि उसमें त्रुटियाँ, अनिश्चित उपलब्धियों की आशंका और गलत परिणामों के निकलने का खतरा न हो। साधनों की न्यूनता और परिस्थितियों की प्रतिकूलता से निराश नहीं होना चाहिये। चीटियों और मधुमक्खियों के पास क्या है? तो भी वे अपने संकल्पों पर अडिग हैं। साधनों की विपुलता और परिस्थितियों की अनुकूलता हो, तो भी यह जरूरी नहीं है कि आप अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति कर ही लेंगे। जब तक आपमें आत्मविश्वास, साहस, धैर्य, निर्भीकता और अजेय संकल्प-शक्ति न हो, तब तक आपको सफलता

४. गीता, २/१२, ३६
५. वही, २/४१-४२

मिलना असम्भव है। सर्वप्रथम अपनी अनन्त आकांक्षाओं में से किसी एक आकांक्षा की पूर्ति का लक्ष्य रखें। यह लक्ष्य भी दूरवर्ती और महत्तम न हो। पहले समीपवर्ती और छोटे-छोटे लक्ष्यों के निर्धारण से सफलता सुनिश्चित रहती है और हताशाएँ कम होती हैं। मन के तलघर में वासनाओं का जो कूड़ा-कचड़ा जमा रहता है, उससे दुर्गन्ध निकलती रहती है। आत्मतुष्ट होकर बाह्यमुखी इन्द्रियों को नियंत्रित करके उन्हें मन में और मन को बुद्धि में पर्यवसित करने का उपक्रम किया जाय, तो चपलता पर अंकुश लगाया जा सकता है। बुद्धि के स्थिर होने पर मन द्वन्द्वातीत अवस्था को प्राप्त होता है। व्यवसायात्मिका-बुद्धि क्रिया-विशेष-बहुला और अनन्त-शाखा नहीं होती। स्थितप्रज्ञ चपल नहीं होता; क्योंकि वह योगस्थ, आत्मवश्य, नि:संग और विगतस्पृह होकर ही प्रत्येक कार्य करता है। ज्ञान, वैराग्य और अभ्यास से अनावश्यक क्रियाएँ न्यून होंगी और अन्यान्य कार्य-व्यापार भी प्रतिबन्धित होंगे। **योगस्थः कुरु कर्माणि** (२.४८) का महामंत्र जब जीवन का ध्येयवाद निर्धारित हो, तब चपलता का प्रश्न ही कहाँ है? अनावश्यक तथा इतरेतर क्रियाएँ भी क्यों होंगी? योग में स्थित होने पर काम-क्रोध-आदि मनोभावों और क्षुधा-पिपासा आदि के आवेगों को भी नियंत्रित करना सरल हो जाता है। फिर इन मनोभावों तथा आवेगों से प्रसूत चपलता-सुन्दरी अनन्त सौन्दर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण के ही गले का हार बनेगी। हमारी फाँसी का फन्दा बनने का अवसर ही उसे नहीं मिलेगा। यह अचपलता-योग ही हमारे लिये परम उत्तम आत्मज्ञान है और परम श्रेय हैं –

आकिंचन्यं सुसन्तोषो निराशित्वम्-अचापलम्।
एतदेव परं ज्ञानं सदात्म-ज्ञानम्-उत्तमम्॥
(महा. वनपर्व ११३.३५)

अथवा –

आकिंचन्यं सुसन्तोषो निराशित्वम्-अचापलम्।
एतदाहुः परं श्रेय आत्मज्ञस्य जितात्मनः॥
(वही, शान्तिपर्व)

अचपलता स्थितप्रज्ञता है। स्थितप्रज्ञ सुख-दु:ख में समान, मनोगत कामनाओं का त्याग करके अपने आप में सन्तुष्ट रहता है। उसकी बुद्धि निश्चयात्मक और एकाग्र, ध्येयनिष्ठ तथा योगयुक्त होती है। वह भोगों और ऐश्वर्यों के प्रति आकृष्ट होकर अनेकानेक क्रियाओं में आसक्त नहीं होता। वह जो भी कार्य करता है; पूर्ण निपुणता, निष्ठा, दत्तचित्तता और सिद्धि-असिद्धि से निस्पृह होकर करता है। जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही वह अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने वश में कर लेता है। वह विषयों का अनुचिन्तन नहीं करता और कामनाओं के पीछे नहीं दौड़ता। वह तो राग-द्वेष से परे जाकर प्रसन्नता की अनुभूति करता है। इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि – सभी स्थिर, ध्येयनिष्ठ, एकाग्र तथा समंजित हो जाने पर चपलता नहीं रहती। व्यक्ति ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त हो जाता है। ❑❑❑

श्रम के फूल

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

श्रम की महिमा अमित अपार।
श्रम ही सुख का है आधार॥

जो श्रम से लेता मुख मोड़।
उसको सब जन देते छोड़॥

जो भी जन होते श्रमखोर।
वे हैं जग में वंचक-चोर॥

बिना परिश्रम सुखमय भोग।
बन जाता है जीवन-रोग॥

श्रम देता है शुभ परिणाम।
श्रम ही सभी सुखों का धाम॥

जो भी जन होते श्रमहीन।
उनका जीवन दुखमय-दीन॥

श्रम का है आलस से बैर।
श्रम से सकते सागर तैर॥

जो मिलता है, श्रम के बाद।
उस फल का है न्यारा स्वाद।

चाहे कोई भी हो कर्म।
श्रम बन जाता सबका धर्म॥

शुभ कर्मों में ही श्रम धर्म।
धर्म-बिना श्रम है अपकर्म॥

जब जन करते हैं 'श्रमदान'।
वह होता कर्तव्य महान॥

जहाँ न खिलते श्रम के फूल।
वह जीवन बन जाता धूल॥

एक अपील : विवेकानन्द विद्यार्थी भवन

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर-४४० ०१२ (महाराष्ट्र)

फोन : (०७१२) २४३२६९०, २४२३४२२; फॅक्स : २४३७०४२

Email: rkmath_ngp@sancharnet.in

प्रिय महोदय,

नमस्कार तथा शुभ-कामनाएँ

आप जानते हैं कि नागपुर का रामकृष्ण मठ १९३२ ई. से ही कॉलेज के विद्यार्थियों के लिये एक छात्रावास चला रहा है। नागपुर विश्वविद्यालय से जुड़े विभिन्न कॉलेजों के विद्यार्थी इस छात्रावास में प्रवेश पाते हैं। मठ द्वारा कुछ निर्धन तथा योग्य छात्रों के निवास तथा भोजन का व्ययभार भी वहन किया जाता है। पाठ-चक्र तथा कक्षाओं के माध्यम से छात्रों के सर्वांगीण विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता है, ताकि वे आदर्श नागरिक बनकर स्वामी विवेकानन्द के सपनों का भारत गढ़ सकें।

हम ५० निर्धन छात्रों के रहने हेतु एक नये विद्यार्थी-भवन का निर्माण आरम्भ कर चुके हैं। इस छात्रावास में एक प्रार्थनाकक्ष, एक सभागृह, रसोईघर तथा भोजनालय, तथा ग्रन्थालय (जिसमें दर्शन, धर्म, शिक्षा, संस्कृति, साहित्य, समाजशास्त्र, इतिहास, कला, विज्ञान, जीवनी, कृषि आदि विषयों पर संस्कृत, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी, बंगाली आदि) विभिन्न भाषाओं में और एक सी.डी. संग्रहालय भी होगा। इसमें छात्रावास के अन्तेवासियों के सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास हेतु कम्प्यूटर ज्ञान लैब, खेलकूद (इनडोर तथा आउटडोर), व्यायामशाला तथा आध्यात्मिकता एवं मानवीय मूल्यों पर बल देनेवाला प्रदर्शनी-कक्ष की भी श्रेष्ठ सुविधाएँ उपलब्ध होंगी।

निर्माणाधीन परियोजना का विस्तृत विवरण इस प्रकार है –

लम्बाई तथा चौड़ाई – १२१' x ६२' तलघर – २९' x ६०' सभागृह तथा व्यायामशाला – २९' x ६०'
ग्रन्थालय – २९' x ६०' रसोई तथा भोजनालय – २९' x ६०' कमरे – १९' x १३'

पहले इस परियोजना का व्यय १,६८,००,००० रुपये आकलित किया गया था, परन्तु निर्माण-सामग्रियों तथा मजूदूरी आदि के दर में काफी वृद्धि हो जाने के कारण इस पर लगभग २,२०,००,००० रुपये खर्च आने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त छात्रों के लिये उपरोक्त सभी सुविधाओं को उपलब्ध कराने हेतु भी लगभग ६४,००,००० रुपयों की आर्थिक सहायता की आवश्यकता होगी। **इस प्रकार इस परियोजना के लिये अनुमानतः कुल २,८४,००,००० (दो करोड़ चौरासी लाख) रुपयों की आवश्यकता होगी।**

इस तरह की तथा ऐसी बृहत् परियोजना को पूरा करने के लिये सभी लोगों की शुभ-कामनाओं तथा समर्थन की आवश्यकता होती है, अत: हमारा आपसे विनम्र अनुरोध है कि आप भी इस परियोजना में सहभागी बने और निर्धन छात्रों की मानवीय उन्नति के लिये उदारतापूर्वक दान करें। आपकी सहयोग-राशि को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार तथा सूचित किया जायेगा।

आप सभी पर श्रीरामकृष्ण का आशीर्वाद बना रहे।

स्वामी ब्रह्मस्थानन्द

अध्यक्ष

सूचना : दान की राशि **रामकृष्ण मठ, नागपुर** के नाम से डी.डी. या चेक द्वारा भेजी जा सकती है। यह दान आयकर विभाग द्वारा ८०-जी के अन्तर्गत छूट प्राप्त है। विदेशी मुद्रा में भी दान स्वीकार्य है। कृपया पत्र में 'विवेकानन्द विद्यार्थी भवन' का उल्लेख करें।

विवेकानन्द जयन्ती समारोह, रायपुर – २००८

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में 'विवेकानन्द जयन्ती' के शुभ अवसर पर छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास हेतु आश्रम के सत्संग-भवन में विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन हुआ और आध्यात्मिक शृंखला में आश्रम-परिसर में व्याख्यान-मालाओं का आयोजन किया गया। उन कार्यक्रमों की विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत है –

१ जनवरी, मंगलवार को अन्तर्महाविद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता आयोजित की गयी, विषय था – 'वर्तमान भारत और स्वामी विवेकानन्द'। प्रथम पुरस्कार विजेत्री कु. पूजा जैन ने कहा – "स्वामी विवेकानन्द वर्तमान भारत के द्रष्टा ही नहीं स्रष्टा भी थे। इनके विचार हर युग में तरोताजा प्रतीत होते हैं। भारत की संस्कृति को बचाने में स्वामीजी के योगदान को हम भूल नहीं सकते। जमशेदजी टाटा के तकनीकी अनुसंधान संस्थान के प्रेरणा-स्रोत स्वामीजी ही थे। स्वामी विवेकानन्द वर्तमान भारत की नींव हैं और वर्तमान भारत के पर्याय भी हैं।" द्वितीय पुरस्कार विजेत्री कु. खिलेश्वरी ध्रुव ने कहा – "स्वामी विवेकानन्द भारत की नवयुग की साधना और अग्रदूत हैं। वर्तमान भारत की सुदृढ़ आधार शिला स्वामीजी ने ही रखी थी।"

दीपेश वैष्णव ने कहा कि स्वामी विवेकानन्द के विचार आज भी देश के विघटन को रोक सकते हैं। गणेश पाण्डेय ने 'मैं मानवता का सन्देश सुनाता हूँ' – शीर्षक गीत से अपना व्याख्यान आरम्भ करते हुये कहा – "भारत में लोकतन्त्र है, जिसे स्वामीजी चाहते थे। भारत के विकास को देखकर हमारा सीना चौड़ा हो जाता है।"

सभा की अध्यक्षता करते हुये श्री हर्षवर्धन तिवारी ने कहा – "युवा-वर्ग राष्ट्रीय चेतना का परिचायक होता है। स्वामी विवेकानन्द युवाओं के प्रेरणा-स्रोत थे। यद्यपि युवाओं के प्रेरक-स्रोत का आज अभाव हो रहा है। आप इस भाषण प्रतियोगिता को प्रतियोगिता नहीं, बल्कि राष्ट्रीय चिन्तन समझें। आज दिग्भ्रमित युवाओं को स्वामीजी की आवश्यकता है।

२ जनवरी, बुधवार को अन्तर्महाविद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। प्रथम पुरस्कार विजेत्री कु. पूजा जैन ने 'मनुष्य खुद ही अपने भाग्य का निर्माता है' विषय का प्रतिपादन करते हुये कहा – "प्राचीन काल में कहते थे 'जैसी करनी वैसी भरनी'। स्वामी विवेकानन्द जी भी साहस, बल और पुरुषार्थ पर जोर देते हैं। जब तक हम स्वयं की बुद्धि और कर्म से कुछ नहीं करेंगे, तब तक हाथ-पर-हाथ रखकर बैठने से किसी को भी कुछ भी हासिल नहीं होगा।"

खिलेश्वर रक्सेल ने 'समाज और मीडिया का तथ्य' विषय पर कहा – "मीडिया के सावधानीपूर्वक खबर न देने से पूरे देश में दंगा हो जाता है। जैसे श्रीमती इंदिरा गाँधी की हत्या के समय 'सिक्ख' शब्द कहने से हुआ था। इससे कितने निर्दोष लोग मारे गये थे। अत: मीडिया को समाज का कल्याण देखकर खबर देना चाहिये। केवल चटपटी खबरें देना ही उद्देश्य नहीं होना चाहिये।"

आनन्द शंकर झा ने 'भारतीय खेल का विश्व में स्थान' विषय पर बोलते हुये तीन महत्वपूर्ण सुझाव दिये – "खेल में खिलाड़ियों को उत्कृष्ट प्रशिक्षण दें, उन्हें प्रोत्साहन दें और खेल ड्रग्स के बल पर न खेलकर अपने पुरुषार्थ के बल पर खेलें।"

नीरज सिंह ने 'भूल मत मनुष्य तू बड़ा महान है', विक्रान्त सिंह ने 'दान देकर बन तू महान्', मोहिन्दिता सहगल ने 'विज्ञान और धर्म', मिथिलेश साहू ने 'सर्वश्रेष्ठ सहायता स्वावलम्बन', कविता पटेल ने 'धर्म और राजनीति', परात्पर प्रधान ने 'भारत का कम्प्यूटर के क्षेत्र में योगदान', मयंक मिश्र ने 'दुनिया से सिमटती हुई मानवता' आदि विषयों पर विचार व्यक्त किये।

रविशंकर विश्वविद्यालय में फार्मेसी विभाग के अध्यक्ष प्रो. शैलेन्द्र सर्राफ ने इस सत्र की अध्यक्षता की। उन्होंने सबसे पहले सभी विषयों को ठीक से समझाया तथा सकारात्मक सोच को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने कहा कि विज्ञान से ९०% समाज का कल्याण हुआ है। अब तक सकारात्मक सोच और सकारात्मक ऊर्जा से ही मानव-समाज ने विकास किया है। जहाँ धर्म रहेगा, वहीं नीतियाँ रहेंगी। मशीनीकरण के कारण दूरियाँ हैं, जब मानवीकरण होगा, तब दूरियाँ कम होंगी।

३ जनवरी, गुरुवार को अन्तर्महाविद्यालयीन वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – 'इस सदन की राय में सह-शिक्षा छात्र-छात्राओं के व्यक्तित्व-विकास में बाधक है।' विषय का सम्यक् प्रतिपादन करते एवं अनेकों आवश्यक तथ्य देते हुये प्रथम पुरस्कार विजेत्री कु. पूजा जैन ने विपक्ष में कहा कि सह-शिक्षा एक दूसरे को सम्पूर्णता प्रदान करने के लिये है।

विषय के पक्ष में आनन्द शंकर झा ने कहा – "शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व-विकास तथा समाज-सुधार होता है। आज हमें अपनी सोच बदलने की आवश्यकता है। रामकृष्ण मिशन और अन्य कई विद्यालयों में सह-शिक्षा नहीं दी जाती, तो क्या वहाँ व्यक्तित्व-विकास नहीं होता? राजीव गाँधी, मनमोहन सिंह, डॉ.राधाकृष्णन् आदि अनेकों लोग सह-शिक्षा के संस्थानों में नहीं पढ़े, तो क्या उनका व्यक्तित्व-विकास नहीं हुआ?"

विपक्ष में कु. दिव्या भारद्वाज ने कहा – "सह-शिक्षा की शुरुआत स्विटजरलैंड से हुई और वह सफल रही। वर्तमान परिस्थितियों में

बालिकाओं के लिये पृथक् महाविद्यालय, विश्व-विद्यालय और तकनीकी संस्थान खोलना असम्भव है। व्यक्तित्व के विकास में नारी-पुरुष के सह-शिक्षा की जरूरत है। सह-शिक्षा से सह-अस्तित्व की भावना का विकास होता है।''

विपक्ष में सोनित कुमार भारद्वाज ने कहा – ''एक छात्र ८ घंटे कॉलेज में बिताता है और १६ घंटे अपने माता-पिता, भाई-बहन और समाज में बिताता है, तो क्या ८ घंटे के सह-शिक्षा से उसका व्यक्तित्व-विकास बाधित हो जायेगा? मैं ऐसा नहीं मानता।'' खिलेश्वर रक्सेल ने विपक्ष में कहा कि जैसे माँ अपने पुत्र-पुत्री की शिक्षा में भेद नहीं करती, वैसे ही एक शिक्षक को भी भेद नहीं करना चाहिये।

इस सत्र की अध्यक्षता रविशंकर विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र के प्राध्यापक जे. एन. भारद्वाज जी ने की। उन्होंने बड़े ही रोचक ढंग से पक्ष-विपक्ष को विषय की वास्तविकता से अवगत कराया और अपने कुछ शैक्षणिक अनुभव सुनाये। उन्होंने कहा – ''किसी विद्वान् का कथन है, 'यदि आप मुझे ६० अच्छी मातायें दें, तो मैं आपको एक अच्छा राष्ट्र दे सकता हूँ।' बच्चा नागरिकता का पाठ माता-पिता के प्यार-दुलार से सीखता है। एक देश की वास्तविक सम्पत्ति वहाँ के लोग होते हैं। आज देश के महिलाओं की शिक्षा कम है। संसाधनों की कमी के कारण हम अलग-अलग शिक्षा देने में सक्षम नहीं हैं। यदि हम महिलाओं को शिक्षित नहीं करेंगे, तो व्यक्तित्व-निर्माण कैसे होगा? व्यक्तित्व-निर्माण के बिना देश का विकास कैसे होगा? जैसे अर्जुन का लक्ष्य उस चिड़ियाँ की आँख पर थी, वैसे ही विद्यार्थी का लक्ष्य ज्ञानार्जन है। हनुमान जी माता सीताजी से आशीर्वाद लेकर ही पूर्ण होते हैं। इसलिये सह-शिक्षा बाधक नहीं है। सह-शिक्षा से सोच बदलेगी और दुनिया का विकास होगा।''

४ जनवरी, शुक्रवार को अन्तर्विद्यालयीन वाद-विवाद स्पर्धा थी। विषय था – 'इस सदन की राय में व्याप्त भ्रष्टाचार का उन्मूलन केवल प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली से सम्भव नहीं है।' विषय के पक्ष में अलक्षेन्द्र मोंगरे ने कहा – ''प्रजातंत्रात्मक प्रणाली सोने के कलश में जहर भरे हुये के समान है। यदि यह प्रणाली ठीक होती, तो आज भी लोग गरीब और सड़क पर भीख माँगते हुये बच्चे नहीं दिखते तथा इतना भ्रष्टाचार नहीं होता। भ्रष्टाचार के लिये यही जिम्मेदार है।''

विपक्ष में कमलकान्त चन्द्रवंशी ने कहा – ''प्रजातंत्रात्मक प्रणाली जनता की शक्ति है। यह काफी संगठित और सुगठित है। इससे देश का बहुत विकास हुआ है। यह सरकार ही ठीक है और भ्रष्टाचार को मिटा सकती है।'' उत्कर्ष चतुर्वेदी ने विपक्ष में कहा कि प्रजातंत्रात्मक प्रणाली में भ्रष्टाचार का विरोध हो सकता है। इसी प्रणाली के कारण ही बड़े-से-बड़े नेताओं को भी घोंटाले में फँसने पर अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ा है और जेल तक जाना पड़ा है। अनिकेत झा ने कहा कि प्रजातंत्रात्मक प्रणाली पवित्र है।

सत्र के अध्यक्ष श्री अरुण कुमार चटर्जी ने कहा कि सुसंस्कार और आत्मबल से भ्रष्टाचार मिट सकता है।

५ जनवरी, शनिवार को अन्तर्विद्यालयीन तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता थी। संदीप शर्मा ने 'मानव और प्रकृति के बीच तालमेल की आवश्यकता' नामक विषय पर कहा – ''हमें प्रकृति के साथ खिलवाड़ नहीं करनी चाहिये, बल्कि इसकी सुरक्षा करनी चाहिये। प्रकृति से खिलवाड़ करने पर हमें उसका बुरा परिणाम भुगतना होगा। इसे हमें समझना होगा, तभी हमारा समाज बचेगा।'' मीनल बंछोर ने 'भारतीय समाज में नारी का स्थान' नामक विषय पर कहा – ''देश के विकास में जितना योगदान पुरुषों का होता है, उतना ही नारियों का भी। आज विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में नारियों की भूमिका को देखकर नारियों का आत्मविश्वास बढ़ गया है। वे हर क्षेत्र में आगे हैं। नारियाँ माँ-बहन-पत्नी के रूप में हमेशा दूसरों की मदद करती आई हैं।'' अलक्षेन्द्र मोंगरे का विषय था, 'पर्यावरण स्वच्छता'। उन्होंने कहा – ''हमारा जीवन इसी पर्यावरण से शुरू होता है। पर्यावरण प्रकृति माता द्वारा दिया ऐसा उपहार है, जिसकी तुलना किसी ने आज तक किसी अन्य वस्तु से नहीं की। पर्यावरण-समस्या पूरे विश्व पर कलंक है। यदि हम इसे पूरी तरह स्वच्छ नहीं रख सकते, तो भी इसके लिये प्रयास तो कर ही सकते हैं।'' अनिकेत झा ने 'पाश्चात्य संस्कृति का आक्रमण', लीला बिहारी पाण्डेय ने 'टी.वी. अभिशाप या वरदान', कमलकान्त चन्द्रवंशी ने 'भ्रष्टाचार कैसे मिटे', उत्कर्ष चन्द्राकर ने 'धर्म और राजनीति', कु. अंकिता अग्रवाल ने 'कम्प्यूटर के फायदे' और अभिषेक चन्द्राकर ने 'पर्यावरण प्रदूषण' पर अपने विचार दिये।

इस सत्र की अध्यक्षता पूर्व प्राचार्य और छत्तीसगढ़ शासन के उच्च शिक्षा निदेशक श्री आर. जी. भावे ने की। उन्होंने कहा कि तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता की तैयारी सतत चलनेवाली प्रक्रिया है। वह विद्यार्थी सफल होगा, जो परीक्षा के पहले से ही सावधान होकर अध्ययन करता है। तात्कालिक भाषणवाला कभी नुकसान में नहीं रहता, ऐसा मेरा अनुभव है। क्योंकि वह हमेशा सजग, सावधान रहता है। हम बच्चों से भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। कहा गया है कि बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्। भ्रष्टाचार हमारे से ही पल्लवित होता और इसका समाधान भी हम स्वयं से ही कर सकते हैं। हम अपने जीवन के लक्ष्य को सामने रखें और अपनी संस्कृति द्वारा उसे पाने की चेष्टा करें।

६ जनवरी, रविवार को अन्तर्विद्यालयीन विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता थी। विषय था – 'भारतीय नवजागरण के उद्गाता स्वामी विवेकानन्द'। प्रथम पुरस्कार विजेत्री कुमारी पारुल ठाकुर ने अपने ओजस्वी भाषण में कहा – ''जब स्वामीजी का आविर्भाव हुआ था, तब हमारा देश सदियों से इस्लामी और पश्चिमी संस्कृति के आक्रमण से घोंघे के समान अपने खाल में आश्रय ले रहा था। आक्रमण करने का साहस तो दूर स्वयं को विश्व के सम्मुख उपस्थित करने की क्षमता भी वह खो चुका था। ऐसे परिवेश में स्वामीजी ने 'उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' का महामंत्र देकर भारतवासियों की सुषुप्त आत्मशक्ति को जगाया था और इसके परिणामस्वरूप जब भारत ने उठना शुरू किया, तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।'' कु. मीनल बंछोर ने कहा कि स्वामीजी ने भारत के अतीत के गौरव-गान करके भारतीयों में आत्मविश्वास जगाया। यदि भारत की समस्याओं के समाधान हेतु हम विवेकानन्द जी के उद्गारों से परिचित हों, तो बेहतर होगा। रोहन रक्षित ने कहा कि स्वामीजी ने एक नकारात्मक भारत को

सकारात्मक भारत में परिणत किया । अलक्षेन्द्र मोंगरे ने भारतीयों की आत्मशक्ति को याद दिलाते हुये ओजस्वी स्वर में कहा –

सितारों को हम चबा सकते हैं,
पृथ्वी को गेंद बना सकते हैं ।
तुम जानते हो, हम कौन हैं?
हम भारतीय हैं, हम भारतीय हैं ।।

इस सत्र की अध्यक्षता श्री असीम झा ने की । उन्होंने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में कहा कि यदि हम स्वामी विवेकानन्द जी को पढ़ें तो अपने जीवन में बहुत सा परिवर्तन ला सकते हैं । अँग्रेजों की गुलामी करते-करते भारतवासियों के अन्दर हीनता की भावना पैदा हो गयी थी । स्वामीजी ने इसे पहचाना और भारतवासियों में आत्मविश्वास जगाया । उन्होंने सिंह-शावक की कहानी का उद्धरण भी दिया ।

७ जनवरी, सोमवार को अन्तर्माध्यमिक शाला विवेकानन्द भाषण प्रतियोगिता का विषय था – 'राष्ट्रनिर्माता स्वामी विवेकानन्द ।' सुशान्त झा ने कहा – "स्वामी विवेकानन्द का हृदय देश की गरीबी और दुरावस्था को देखकर द्रवित हो गया था । उन्होंने आधुनिक भारत के निर्माण हेतु धर्म और विज्ञान का समन्वय किया । स्वामीजी ने उद्घोष किया – 'उठो, जागो और लक्ष्य-प्राप्ति तक रुको मत' ।" मेघा चौबे ने कहा कि हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और ईसाई ये धर्म नहीं हैं, ये तो सम्प्रदाय हैं । धर्म तो इन सबसे ऊपर है जिसे हम मानवता का धर्म कहते हैं । कुमारी तान्या शर्मा ने शान्ति मंत्र 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' से अपना व्याख्यान आरम्भ किया और स्वामीजी के अग्निमंत्र का पाठ किया । उसने कहा कि स्वामी विवेकानन्द जी ने त्याग और सेवा के आदर्श को भारतवासियों को बोध कराया ।"

वरुण दूबे ने कहा – "स्वामी विवेकानन्द ने त्याग और बन्धुत्व का मार्ग चुना । उन्होंने कहा कि राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास करना होगा, तब भारत का उत्थान होगा । इसके लिये उन्होंने आजीवन प्रयत्न किया । संजय साहू ने कहा कि देश को महान् बनाने के लिये संगठन-शक्ति की जरूरत थी और स्वामीजी ने देश को संगठित करने का संदेश दिया । वैष्णवी काले ने कहा – "राष्ट्र-निर्माण तभी होगा जब मनुष्य-निर्माण होगा और मनुष्य-निर्माण आत्मविश्वास से होगा । स्वामीजी भारतवासियों में आत्मविश्वास पैदा करने और नव राष्ट्र के निर्माण हेतु अविराम संघर्ष किये ।" महेन्द्र कुर्रे ने कहा – "जब भारत को काले बादल ने ढँक लिया था, जब भारत लोभ-मोह और भोग जैसे कुसंस्कारों से आच्छन्न था । जाति, धर्म और सम्प्रदाय के नाम पर लोगों में सदैव कलह और अशान्ति फैली रहती थी, तब स्वामीजी ने जन-मानस को प्रेरणा देकर शान्ति स्थापित किया था । उनका कार्य-क्षेत्र सिर्फ भारत तक सीमित नहीं था, वरन् सम्पूर्ण मानवता उनकी परिधि में आती थी । ऐसे विराट व्यक्तित्व से सम्पन्न स्वामी विवेकानन्द जी को मैं राष्ट्र-निर्माता कैसे न मानूँ !"

इस सत्र की अध्यक्षता दूधाधारी बजरंग महाविद्यालय की प्राध्यापिका श्रीमती शम्पा चौबे ने किया । उन्होंने कहा –

लोहे को हमने तपते देखा, ढलते देखा,
चमकते देखा और गोली जैसा चलते देखा ।।

दो महान् व्यक्तित्व हैं – स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र बोस । सुभाषचन्द्र बोस ने देश को स्वतंत्र करने के लिये सेना खड़ी की और स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो में भाइयो और बहनो से संबोधित कर पूरी मानवता को विश्वबन्धुत्व का बोध कराया और भारत के नव-जागरण का देशवासियों में आत्म-विश्वास उत्पन्न किया; युवकों में सकारात्मक सोच की भावना जाग्रत की । बच्चे स्वामीजी पर बोलकर तेजस्वी बन रहे हैं । युवको, चिन्तनशील बनो । विवेकानन्द का ऐसा व्यक्तित्व है, जिस पर बोलने से जोश ही उभरेगा । मेरे जीवन के दो हीरो हैं, आदर्श हैं – स्वामी विवेकानन्द और सुभाषचन्द्र बोस । जब मैं छोटी थी, तब मेरे पिताजी ने इन दोनों के बारे में हमें बहुत-सी बातें बतायी थीं । इनसे हमें अधिक अपनत्व का बोध होता है । हमारा अपनत्व ही हमारा राष्ट्र है । हमारे पास गर्वीला उन्नतशील राष्ट्र है और हम भारतीय हैं ।"

८ जनवरी, मंगलवार को आयोजित अन्तर्माध्यमिक शाला वाद-विवाद प्रतियोगिता का विषय था – 'इस सदन की राय में जीवन में सफलता के लिये धन की अपेक्षा विद्या अधिक महत्त्वपूर्ण है ।' प्रथम पुरस्कार विजेता श्री सुशान्त झा ने पक्ष में कहा – "विद्या-महिमा की यह सूक्ति है –

न चौरहार्यं न राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी ।
व्यये कृते वर्धते एव नित्यं, विद्याधनं सर्वधनं प्रधानम् ।

– 'विद्यारूपी धन को चोर चुरा नहीं सकता, राजा हरण नहीं कर सकते, भाई लोग इसका विभाजन नहीं कर सकते, यह कोई भारी वस्तु भी नहीं है कि सिर पर बोझ जैसा बनी रहे तथा व्यय करने पर नित्य बढ़ती है, इसलिये विद्याधन सभी धनों में प्रधान है ।' शिक्षा की परिभाषा देते हुये स्वामीजी ने कहा कि मनुष्य की अन्तर्निहित शक्ति को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है, जो उसमें पहले से ही विद्यमान है । धन तो लादेन आदि आतंकवादियों के पास भी है, लोग कभी भी उन्हें अपने जीवन का आदर्श नहीं बनायेंगे । स्वामी विवेकानन्द और अब्दुल कलाम जैसे लोगों को ही लोग अपना आदर्श बनायेंगे । कालिदास, कबीरदास, सूरदास, वराहमिहिर, आर्यभट्ट ये सभी विद्वान् थे । धन से इनका कोई वास्ता नहीं था । आधुनिक जगत में टाटा, बिरला और अमिताभ बच्चन आदि ने अपनी विद्या-बुद्धि से ही धन अर्जित किया है ।"

डिलेश्वर मालाकार ने विपक्ष में कहा –

रोशनी हो या न हो यह अलग बात है ।
लेकिन मेरी हर आवाज अन्धेरे के खिलाफ है ।।

धनवान व्यक्ति पढ़-लिखकर बड़े ऊँचे पदों पर पहुँच जाता है, जबकि धनहीन व्यक्ति धन के अभाव में अशिक्षित ही रह जाता है । तान्या शर्मा ने पक्ष में कहा – "विद्या हमारे अन्दर के व्यक्तित्व को विकसित करती है, जो धन से कदापि सम्भव नहीं है । धन जीवन को सहारा हमें भले ही दे, लेकिन वह कभी पूर्णता नहीं दे सकता और अन्तिम लक्ष्य नहीं बन सकता । भारतीय दर्शन विश्वबन्धुत्व और वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श देता है, जो धन से कभी सम्भव नहीं

है । विद्या से धन आ सकता है, लेकिन धन से विद्या नहीं आ सकती ।''

कुमारी प्रियांशी तिवारी विपक्ष बोली – ''आज का युग भौतिकता का युग है । सर्वत्र धन की ही प्रधानता है । पैसे के बल पर ही अमेरिका अन्य देशों से श्रेष्ठ विद्वानों का आयात कर लेता है । यदि आपके पास धन है, तो सब उपलब्ध है । राज-दरबारों में भी पहले वीरबल जैसे महामंत्री रहते थे । धन से अतिरिक्त साहस, बल, शौर्य और ऊर्जा मिलती है ।'' कुमारी पल्लवी दूबे ने कहा कि विद्या के लिये भी धन की जरूरत पड़ती है । उन्होंने विवेक-ज्योति पत्रिका में विश्वविद्यालय हेतु प्रकाशित अपील को दिखाया । उन्होंने कई रचनाकारों की दृष्टि में धन क्या है, उसका उल्लेख किया । विद्या जीवन का प्रथम सोपान है, लक्ष्मी नहीं, किन्तु धन के अभाव में विद्यार्जन भी सम्भव नहीं होता ।

वैष्णवी काले ने पक्ष में कहा – ''विद्या से बुद्धि बढ़ती है और उसी से हमें ज्ञान प्राप्त होता है । प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी विद्या की सहायता से राष्ट्रपति बने थे, धन से नहीं । धन से तन को सजा सकते हैं, लेकिन मन को नहीं । धन अस्थायी और विद्या स्थायी होती है ।''

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुये डॉ. सुषमा वाजपेयी ने कहा – ''यह कटु सत्य है कि हर जगह शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के लिये धन की जरूरत होती है । पर धन ही सब कुछ नहीं है । यदि हममें नैतिकता हो, तो हम सफल हो सकते हैं । भारतीय संस्कृति में विद्या को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है । इस प्रतियोगिता में भी ६ प्रतिभागी पक्ष और ४ प्रतिभागी विपक्ष में बोले । बच्चों ने अपने विचार तार्किक ढंग से प्रस्तुत किये, यह बुद्धि भी उन्हें विद्या से ही मिली है । एक सूक्ति है –

अलसस्य कुतो विद्या, अविद्यस्य कुतो धनम् ।
अधनस्य कुतो मित्रं, अमित्रस्य कुतो सुखम् ।।

इस प्रकार विद्या और धन दोनों के सन्तुलन की आवश्यकता है । यदि एक आधार है, नींव है, तो दूसरा शिखर है ।''

९ जनवरी, बुधवार को अन्तर्प्राथमिक पाठ-आवृत्ति प्रतियोगिता थी । इसमें बच्चों ने उत्साहपूर्वक विवेकानन्द साहित्य से पाठ किया । प्रथम पुरस्कार विजेता मानवेन्द्र ठाकुर ने स्वामीजी के देशभक्ति का आदर्श से शुरू करके अन्त में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' से समाप्त किया । द्वितीय पुरस्कार विजेता प्रांशुल तिवारी ने कहा कि कमर कस लो । जीवन तुच्छ है, इसे सेवा में लगा दो । प्रभु की जय हो ! हम अवश्य सफल होंगे । प्रथम देवांगन ने स्वामीजी के आत्म-विश्वासपरक सूक्तियों का ऊच्च स्वर में पाठ किया । सबसे छोटे बच्चे श्री आर्यांश दूबे ने बड़े ही ओजस्वी और गम्भीर वाणी में यह घटना सुनाकर सबको मुग्ध कर दिया । उसने कहा – ''मैं रायपुर में एक बार बूढ़ा तालाब के रास्ते से जा रहा था । वहाँ मैंने एक बड़ी विशाल मूर्ति देखी । मैंने पूछा – 'यह किसकी मूर्ति है?' तब मुझे बताया गया कि यह महान पुरुष स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति है । मैंने फिर पूछा – 'ये कौन थे?' मुझे बताया गया कि ये एक महान् संन्यासी थे, जिन्होंने शिकागो में सर्वधर्मसम-भाव पर भाषण देकर भारत को महिमान्वित किया । इन्होंने भारत के पुनरुत्थान तथा दीन-दुखियों की सेवा के लिये अपना जीवन दे दिया । मैं स्वामीजी के जीवन की एक घटना बताता हूँ । स्वामीजी एक बार वाराणसी में जा रहे थे । वहाँ उन्हें कुछ बन्दरों ने घेर लिया । वे डरकर भागने लगे । तभी एक संन्यासी के कहने पर वे तुरन्त पीछे मुड़कर बन्दरों का सामना किये । बन्दर उन्हें देखकर भाग गये । स्वामीजी ने इस घटना के द्वारा हमें समस्याओं से संघर्ष करने की शिक्षा दी है । इस घटना से मेरा आत्मविश्वास जग गया । मेरा भय चला गया और मैं यहाँ खड़ा होकर बोलने में सक्षम हुआ ।''

कुमारी अदिति दीवान ने कहा – ''सत्यमेव जयते – सत्य की ही विजय होती है । मेरे बच्चो साहसी जवानो, तुम्हीं सब कुछ हो । कायर मत बनो । तनिक परवाह मत करो । साहसी बनो और वीर बनो ।'' कुमारी समृद्धि शर्मा ने कहा – ''अपने स्वयं के दोष दूसरे के माथे मढ़ना स्वाभाविक दुर्बलता है । अपनी वर्तमान परिस्थितियों के जिम्मेदार हम स्वयं ही हैं । दुर्बल व्यक्ति अपना दोष दूसरे पर मढ़ता है । विश्वास ! विश्वास ! विश्वास ! स्वयं पर विश्वास, परमात्मा में विश्वास । यही महानता का एकमात्र रहस्य है ।'' कृष्णा साहू ने कहा – ''भारत माता हमें पुकार रही है । हमें उनकी उपेक्षा नहीं करनी है । ... तुफानों से जो लड़े, उसे भारत का नौजवान कहते हैं ।''

बालिका स्नातक महाविद्यालय दूधाधारी, रायपुर में गृहविज्ञान की प्राध्यापिका डॉ. अरुणा पालटा ने इस सत्र की अध्यक्षता की । उन्होंने अपने व्याख्यान में अत्यन्त प्रेरक दो कहानियाँ सुनाया । पहली कहानी है – जीव विज्ञान की एक प्रयोगशाला थी । एक तितली कोश में बन्द थी । उसके बाद वह तितली कोश से बाहर निकलने के लिये छटपटाने लगी और बहुत प्रयास करने लगी । वह कोश से धीरे-धीरे बाहर निकल रही थी । उसके शरीर का कुछ हिस्सा बाहर निकलना बाकी थी । शिक्षक कुछ काम से थोड़ी देर के लिये बाहर गये । तब तक एक छात्र को तितली का कष्ट नहीं देखा गया । उसने कोश से तितली को बाहर निकाल दिया । तितली बाहर निकलकर कुछ देर बाद ही मर गयी । शिक्षक ने आकर देखा तो, छात्रों से तितली की इस अवस्था का कारण पूछा । छात्रों से सारी घटना सुनकर शिक्षक ने कहा कि तुम लोगों ने तितली को संघर्ष नहीं करने दिया, जो प्रकृति के विरुद्ध है । इसलिये वह मर गयी । संघर्ष से उसके पंखों में शक्ति आती है । यह प्रकृति का नियम है । अपने प्रयास से कोश को फाड़कर निकलने में वह तितली शक्तिशाली होकर बाहर निकल आती । लेकिन तुम लोगों ने उसे यह अवसर नहीं दिया । बच्चो ! जीवन में कठोर परिश्रम करो । भविष्य में इसका अच्छा परिणाम होगा । जो अपनी सहायता करते हैं, भगवान भी उन्हीं की सहायता करते हैं ।

दूसरी कहानी है – एक गाँव था । वहाँ एक भगवान के भक्त भी रहते थे । एक दिन गाँव में बाढ़ आ गयी । गाँव के सभी लोग जाने लगे । सबने उस भक्त से कहा कि आप भी हम लोगों के साथ चलिये । लेकिन भक्त ने कहा कि मैं नहीं जाऊँगा, भगवान मुझे बचाने अवश्य आयेंगे । अन्तिम बैलगाड़ी जा रही थी । लोगों ने उनसे चलने का निवेदन किया, लेकिन वे नहीं गये । रात में पानी बढ़ने लगा । उन्हें लेने नाव आयी, फिर भी वे नहीं गये । पानी बढ़ने लगा । पानी मन्दिर के शिखर पर पहुँच गया । उन्हें लेने हेलीकॉप्टर आया । लेकिन वे एक ही बात रटते रहे कि मैंने भगवान की इतनी पूजा की है, वे हमें अवश्य आकर बचायेंगे । अन्त में वे डूबकर मर गये । उन्होंने स्वर्ग में जाकर भगवान

से शिकायत की। भगवान बोले – मैंने तो तुम्हें बचाने के लिये बैलगाड़ी, नाव और हेलीकॉप्टर भेजा, लेकिन तुमने किसी का भी उपयोग नहीं किया। किसी भी वस्तु का लाभ नहीं उठाया। इसमें मेरा क्या दोष है? अत: हमें भगवान द्वारा प्रदत्त सभी वस्तुओं का समयानुसार सदुपयोग करना चाहिये।

प्रतियोगिता के सम्पूर्ण सत्रों का संचालन स्वामी निर्विकारानन्द जी और स्वामी ब्रजनाथानन्द जी ने किया।

१२ जनवरी, शनिवार को प्रात: ९ बजे रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर और रविशंकर विश्वविद्यालय की राष्ट्रीय सेवा योजना ने विश्वविद्यालय परिसर में संयुक्त रूप से विवेकानन्द जयन्ती को 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में मनाया। विश्वविद्यालय परिसर में आगत अतिथियों ने स्वामी विवेकानन्द जी की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं पूजा-आरती की। आश्रम के संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और छात्रों ने शान्ति पाठ किया। इस कार्यक्रम में राष्ट्रीय सेवा योजना की स्थानीय इकाइयों ने भी भाग लिया। स्वागत भाषण रा.से.यो. के समन्वयक श्री सुभाष चन्द्राकर ने किया। छत्तीसगढ़ के विख्यात् पत्रकार श्री रमेश नैयर ने सभा की अध्यक्षता की। सभा के विशिष्ट अतिथि रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द, कुलाधिसचिव श्री अवध चन्द्राकर और पूर्व कुलाधिसचिव और विवेकानन्द विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने व्याख्यान दिये। कार्यक्रम का समापन विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा के छात्रों के द्वारा गाये गये गीत 'विवेकानन्द आनन्द धाम' से हुआ।

१२ जनवरी के दिन ही सायंकाल ६ बजे आश्रम में विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन हुआ। जिसका उद्घाटन छत्तीसगढ़ के महामहिम राज्यपाल श्री ई. एस. एल. नरसिम्हन ने किया। कार्यक्रम का उद्घाटन सांगितिक वाद्य-गीत सह राष्ट्रगान और विवेकानन्द विद्यार्थी भवन के छात्रों द्वारा गाये गये गीत से हुआ। रविशंकर विश्वविद्यालय के प्राध्यापक और विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओम प्रकाश वर्मा ने आश्रम की ओर से अतिथियों का स्वागत तथा कार्यक्रम का संचालन किया। आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी ने अतिथियों को आश्रम के क्रिया-कलापों से अवगत कराया। विभिन्न प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान-प्राप्त छात्र-छात्राओं ने अपने ओजस्वी व्याख्यान सुनाकर पूरी सभा को मुग्ध कर दिया।

बच्चों के व्याख्यानों के बाद हिन्दुस्तान पेट्रोलियम कॉरपोरेशन, पश्चिमी जोन के जनरल मैनेजर श्री एम. एस. दामले ने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर को आश्रम के सेवा-कार्यों के लिये 'टाटा स्पेसियो' वाहन प्रदान किया। श्री डामले ने वाहन की चाबी महामहिम राज्यपाल को और उन्होंने आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी को प्रदान किया। श्री डामले ने हिन्दुस्तान पेट्रोलियम द्वारा किये गये सेवा-कार्यों का विवरण दिया और कहा कि आज के परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द जी एक महान भविष्यद्रष्टा और युवकों के आदर्श हैं।

सभा की अध्यक्षता पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके, एम.डी. शिशु रोग विशेषज्ञ ने किया। बच्चों के व्याख्यान से प्रभावित होकर उन्होंने कहा – "यदि मैं जानता कि बच्चे इतने अच्छे बोलते हैं, तो मैं अपना भी व्याख्यान उन्हीं से लिखवा लेता। जब युवाओं में स्वाभिमान नहीं था, ऐसे समय में स्वामीजी ने इस देश के युवाओं और जनता को सही मार्ग दिखाया। मेरी दृष्टि में यह एक युगपुरुष ही कर सकता है।

"स्वामीजी ने तीन बिन्दुओं पर बहुत महत्त्व दिया – (१) उस समय की बीमारियों और गरीबी को देखते हुये उन्होंने मनुष्य की सेवा को ईश्वर की सेवा का जो आदर्श दिया, वह उनका बहुत बड़ा योगदान है। आज उसकी आवश्यकता है, क्योंकि देश में ३० से ४०% जनता अब भी निर्धन है। (२) स्वामीजी का दूसरा योगदान है – युवकों के प्रति सन्देश। गीता में उल्लिखित कर्मण्येवाधिकारस्ते.. – 'कर्म करो, किन्तु फल की इच्छा मत करो।' इससे युवकों में आत्मविश्वास आया और वे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने लगे। स्वामीजी ने सोते हुये समाज को उठाने का काम किया। (३) स्वामीजी का तीसरा योगदान है – भारत के वेदान्त, उपनिषद् आदि ग्रन्थों की ऐसी व्याख्या की कि जिसे विश्व की साधारण जनता भी समझ सके। उन्होंने बताया कि विज्ञान और अध्यात्म नदी के दो किनारे हैं, जो कभी मिल नहीं सकते, ऐसा नहीं है। उन्होंने विज्ञान और अध्यात्म को मिलाकर मानव के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया।"

महामहिम राज्यपाल ने विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कार प्रदान किया तथा एक प्रेरक व्याख्यान दिया।

महामहिम राज्यपाल का अभिभाषण

महामहिम राज्यपाल ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा – "जब मैं इस पुरस्कार समारोह में भाग ले रहा था, तब मेरी याद ५२ साल पीछे चली गयी, जब पहले-पहले मेरा सम्बन्ध इस महत्वपूर्ण संस्था रामकृष्ण मिशन से हुआ। जब मैं स्कूल में था, तब भी ये प्रतियोगितायें होती थीं। मैं भी हर साल इसमें भाग लेता था और हमेशा पुरस्कार भी पाता था। उसके बाद मेरा सौभाग्य रहा कि मैं विवेकानन्द कॉलेज चेन्नै का छात्र हुआ और इस प्रकार ५० से भी अधिक वर्षों से मेरा रामकृष्ण मिशन के संस्थानों से नाता जुड़ा हुआ है। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा स्वामी विवेकानन्द जयन्ती के अवसर पर आयोजित कार्यक्रम में शामिल होते हुये मुझे अत्यन्त खुशी हो रही है। सबसे पहले मैं इस अवसर पर आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी, सभी पदाधिकार्यों, सदस्यों और इससे जुड़े लोगों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनायें देता हूँ, जो स्वामी विवेकानन्द जी के कार्यों, विचारों और आदर्शों का विस्तार एवं प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। मैं उन सारे छात्र-छात्राओं को बधाई देना चाहता हूँ, जिन्होंने पुरस्कार पाये। पद्मश्री डॉ. अरुण दाबके जी ने यह भी कहा था कि मंच पर चढ़ते समय इन बच्चों के अन्दर कैसी ऊर्जा आ जाती है।

"अपनी छात्रावस्था में मुझे पुरस्कार मिलता था, तब मैं सोचता था कि मैं ही सबसे अच्छा बोलता हूँ, इसलिये मुझे ही यह पुरस्कार मिला है। लेकिन मैं कहना चाहूँगा कि शायद जब कोई भी विवेकानन्द जी के बारे में बोलना शुरू कर देता है और मंच पर चढ़ता है, तो स्वामी विवेकानन्द जी खुद उसके अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। केवल हमारी वाणी ही हमारे अधरों से निकलती है, लेकिन बोलते हैं स्वयं स्वामी विवेकानन्द जी। बच्चों की इस ऊर्जा का यही रहस्य है।

''स्वामी विवेकानन्द के कार्य और आदर्श मानवता की धरोहर है । देश के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था, ''यदि आप स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं तथा व्याख्यानों को पढ़ें, तो आप उनमें एक अदभुत बात पायेंगे कि वे कभी पुराने नहीं लगते । आज भी ये तरो-ताजा लगते हैं । इसका कारण यह है कि उन्होंने जो कुछ भी लिखा या कहा, वह हमारी या विश्व की समस्याओं के मूलभूत पहलुओं से सम्बन्धित है, ... वह हमारे हित में है और आने वाले लम्बे अरसे तक हमें प्रभावित करते रहेंगे ।

''नि:सन्देह स्वामी विवेकानन्द देश की महान आत्मा, महान सन्त और महामानव थे । उन्होंने अपने जीवन और सन्देश के माध्यम से एक नई चेतना जगायी । विद्वानों ने उन्हें युगनायक, युगप्रवर्तक, युगाचार्य, विश्वमानव, राष्ट्रद्रष्टा, योद्धा-संन्यासी आदि विशेषणों से विभूषित किया है । उन्होंने भारतवासियों में आत्मगौरव की भावना को जगाने, उसे प्रेरित करने, अपनी संस्कृति, इतिहास और आध्यात्मिक परम्पराओं के अनुरूप बनाने का कार्य किया । कविवर रवीन्द्र नाथ टैगोर का कथन है, 'यदि कोई भारत को समझना चाहता है तो उसे विवेकानन्द से जुड़े साहित्य अवश्य पढ़ना चाहिये ।'

''उन्होंने कहा – 'भारतवासी भाइयो ! अच्छी तरह याद रखो, हर भारतीय चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है । अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, निम्न जाति का भारतीय – सब मेरे भाई हैं । भारत मेरा जीवन है और भारत मेरा प्राण है ।' उन्होंने भारतीयों के हृदय में यह बात प्रविष्ट करा दी कि भारत में जन्म पाना परम सौभाग्य है । उन्हें स्पष्ट समझा दिया कि अपनी महान आध्यात्मिक संस्कृति के कारण भारत का अस्तित्व अमर रहेगा ।

''उन्होंने अनुभव किया था कि देश की दुर्दशा का एक बहुत बड़ा कारण गरीबी है और इसीलिये देश की गरीबी को दूर करने के लिये उन्होंने निरन्तर प्रयास किया । उन्होंने धर्म का पहला कर्त्तव्य 'गरीबों की सेवा और उद्धार' बताया । युवाओं से उन्होंने कहा कि वेदान्त पाठ और चिन्तन-मनन फिर कर लेना, पहले यह शरीर, सेवा के लिये समर्पित कर दो । उन्होंने कर्म पर बल दिया और कहा कि जब व्यक्ति का कर्म पूजा बन जाता है तो उसके लिये मन्दिर और प्रयोगशाला में कोई फर्क नहीं रह जाता । उन्होंने कहा – 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत' – अर्थात् उठो, जागो, जब तक इच्छित वस्तु को प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक निरन्तर उसकी ओर बढ़ते जाओ ।'

''उन्होंने देश में युवकों को सम्बोधित करते हुये कहा कि तुम महान् कार्य करने के लिये इस धरती पर आये हो । गीदड़-घुड़कियों से भयभीत न हो जाना, चाहे वज्र भी गिरे, तो भी निडर रहना और कार्य में लगे रहना । उन्होंने युवाओं का आह्वान करते हुये कहा कि देश को वीरों की जरूरत है, अत: वीर बनो । पर्वत की भाँति अडिग रहो । 'सत्यमेव जयते' – सत्य की ही सदैव विजय होती है । साहसी बनो, मनुष्य तो एक बार ही मरता है । मुझे कायरता से घृणा है । गम्भीर से गम्भीर कठिनाइयों में भी अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखो, क्षुद्र अबोध जीव तुम्हारे विरुद्ध क्या कहते हैं, इसकी तनिक भी परवाह न करो । उन्होंने कहा आज देश को जरूरत है साहस और वैज्ञानिक प्रतिभा की । स्त्रियोचित व्यवहार से काम नहीं बनने का । भाग्य-लक्ष्मी उसी के पास आती है जो पुरुषार्थी है, जिसके पास सिंह का हृदय है ।

''स्वामी विवेकानन्द ने पूजा-पाठ से भी ज्यादा जोर सेवा पर दिया । वे केवल व्याख्यान देकर ही नहीं रुके । वे आदर्श संगठनकर्ता भी थे । उन्होंने अपने गुरुदेव के कार्य को आगे चलाने के लिये एक स्थायी संस्था स्थापित करने का विचार किया और रामकृष्ण मठ एवं मिशन की स्थापना की । सेवा पर व्यापक जोर ही मिशन का वैशिष्ट्य है । स्वामीजी का मानना था कि हम दूसरों की सहायता कर पाते हैं, यह हमारा एक विशेष सौभाग्य है । उनका यह भी मानना था कि इस प्रकार के कार्य के द्वारा ही हमारी आत्मोन्नति होगी । उन्होंने हमेशा दाता का आसन ग्रहण करने पर जोर दिया और कहा कि सर्वस्व दे दो, पर बदले में कुछ न चाहो । प्रेम दो, सहायता दो, सेवा दो, इनमें से जो तुम्हारे पास देने के लिये है वह दे डालो, पर सावधान रहो, उसके बदले में कुछ लेने की इच्छा कभी न करो । निश्चय ही यही सच्ची सेवा है ।

''आज के वातावरण में स्वामी विवेकानन्द जी के विचारों को और अधिक समझने और प्रचार-प्रसार करने की जरूरत है । आज हमारा देश स्वामीजी के सन्देशों के प्रकाश में अपनी समस्याओं का समाधान खोज सकता है और सारा विश्व उनके सन्देशों के आधार पर शान्ति-पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकता है । मैं समझता हूँ, यही उनके सन्देशों की प्रासंगिकता है । यह छत्तीसगढ़वासियों का सौभाग्य है कि स्वामी विवेकानन्द ने छत्तीसगढ़ की वर्तमान राजधानी रायपुर में अपने परिवार के साथ दो वर्षों तक निवास किया था । उनकी किशोरावस्था, जो जीवन को काफी प्रभावित करती है, रायपुर में ही बीती ।

''रामकृष्ण मिशन के कार्यों की जितनी भी प्रशंसा की जाय, वह कम है । स्वामी विवेकानन्द जी के सन्देश का प्रचार-प्रसार करके मिशन ने राष्ट्रनिर्माण का एक महान काम किया है । विशेषकर छत्तीसगढ़ में मिशन ने काफी अच्छे और सराहनीय कार्य किये हैं ।

''श्री रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर द्वारा 'विवेक ज्योति' मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी प्रसन्नता की बात है । विवेकानन्द जयन्ती जैसे अवसरों पर छात्र-छात्राओं के लिये आयोजित होनेवाली विभिन्न व्याख्यान-मालायें, वाद-विवाद स्पर्धा एवं अन्य रचनात्मक कार्य प्रशंसनीय हैं । निश्चय ही ये कार्य युवाओं, छात्र-छात्राओं और समाज को प्रेरणा देते रहेंगे । मैं आप सभी के उज्जवल भविष्य की कामना करते हुए इस अच्छे आयोजन के लिये स्वामी सत्यरूपानन्दजी को बधाई देता हूँ । धन्यवाद, जयहिन्द ।'' सभा का समापन 'जन-गण-मन' के सांगितिक वाद्य-गीत से हुआ ।

१३ जनवरी, रविवार से १७ जनवरी तक प्रतिदिन सायंकाल ७ बजे से पं. उमाशंकर जी व्यास के 'लक्ष्मण चरित' पर बड़े ही सारगर्भित प्रवचन हुये तथा १८ जनवरी, शुक्रवार से २४ जनवरी तक स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती 'राजेश रामायणीजी' के 'श्री हनुमान चरित्र' विषय पर संगीतमय प्रवचन हुये । ❑❑❑

(प्रस्तुति – ब्रह्मचारी राजीव और खेमकरण अहीरवार, विवेकानन्द आश्रम रायपुर)